श्री गुरवे नमः

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 02 | अंक 05 | सितम्बर 2024 | पृष्ठ 58

प्राचीन शिक्षा केन्द्र

प्रकाशक

पण्डित मोतीलाल जोशी प्राच्य विद्या अनुसंधान केन्द्र

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन

प्रेरणा स्त्रोत : ''संस्कृत सुमेरु'' पं. मोतीलाल जोशी

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 2 | अंक 5 सितम्बर 2024 | पृष्ठ 58

आशीष प्रदाता
- श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज
- महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज
- महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती

प्रेरणा स्त्रोत
'संस्कृत सुमेरु'
पं. मोतीलाल जोशी

परामर्श मंडल
- देवर्षि कलानाथ शास्त्री
- प्रो. बनवारी लाल गौड़
- प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र
- प्रो. युगल किशोर मिश्र
- प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
- प्रो. जयप्रकाश नारायण द्विवेदी
- प्रो. सदानंद दीक्षित
- प्रो. गोपीनाथ शर्मा
- डॉ. सरोज कोचर

निर्णायक मण्डल
- डॉ. राजेश्वरी भट्ट
- प्रो. श्रीकृष्ण शर्मा
- प्रो. ताराशंकर पाण्डेय
- डॉ. रामदेव साहू
- डॉ. कृष्णा शर्मा
- प्रो. कुलदीप शर्मा
- डॉ. सुभद्रा जोशी

प्रबन्ध संपादक
डॉ. राजकुमार जोशी

प्रधान संपादक
डॉ. मनीषा शर्मा

संपादक मंडल
डॉ. सीताराम दोतोलिया
डॉ. निरंजन साहू
डॉ. सुरेंद्र कुमार शर्मा
श्रीमती मीनाक्षी शर्मा

प्रकाशक
पण्डित मोतीलाल जोशी प्राच्य विद्या अनुसंधान केन्द्र
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ
राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन
शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर
Ph. : +91-141-2671967 | E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org

ISSN : 3048-6173

अनुक्रमणिका

1.	इष्ट अन्न ही उपयुक्त	प्रो.वैद्य बनवारी लाल गौड डॉ. विश्वावसु गौड	4
2.	कथा-परम्परा के उद्गम का वैदिक परिदृश्य	प्रो. युगल किशोर मिश्र	12
3.	अभिनव परम्परा का अभिराम काव्योपक्रम	प्रो. डा. वत्सला आचार्य	26
4.	ब्रह्माण्डे संस्कृतभाषायाः योगदानम्	डॉ. मनीषा शर्मा	35
5.	प्राचीन भारत के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र	गोपीनाथ पारीक	37
6.	NEP 2020: Addressing Challenges and Opportunities in Teacher Education	श्रीमती प्राची बटवाड़ा	41
6.	लेखकीय-वक्तव्य-रूपे राष्ट्रोपनिषत्-प्रस्तावना-शतकम्	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	48
7.	Impact of Artificial Intelligence (AI) on Education	डॉ. खुशबू जैन	52

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

ISSN : 3048-6173

सम्पादकीय

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन एवं राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ शाहपुराबाग, जयपुर द्वारा श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज, महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज एवं महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती के शुभाशीर्वाद के परिणामस्वरूप **'शिक्षा कौस्तुभ'** त्रैमासिक शोधपत्रिका के द्वितीय वर्ष का पंचम अंक प्रकाशित किया जा रहा है। 'संस्कृत सुमेरु' विद्वत् - शिरोमणि स्व. पं. मोतीलाल जी जोशी के संकल्प की परिणति के रूप में उनकी शाश्वती प्रेरणा का यह उत्कृष्ट आयाम विज्ञ परामर्शदाताओं के सत्परामर्श से निर्मित करके संपादक मण्डल द्वारा सम्पादित किया जा रहा है।

त्रैमासिक शोध पत्रिका के इस अंक में शिक्षा, संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान के विषयों पर उत्कृष्ट विद्वानों के लेख-शोधलेख संकलित है। सर्वप्रथम डॉ. विश्वावसु गौड एवं प्रो.वैद्य बनवारी लाल गौड द्वारा लिखित **'इष्ट अन्न ही उपयुक्त'** लेख में इष्ट अन्न की उपयोगिता तथा महत्त्व को स्पष्ट करते हुए मनुष्यों को इच्छित अन्न का ही उपयोग करने की सलाह दी है। प्रो. युगल किशोर मिश्र द्वारा लिखित **'कथा-परम्परा के उद्गम का वैदिक परिदृश्य'** लेख में कथा परम्परा का उद्गम बताते हुये कथा परम्परा के उद्गम का वैदिक परिदृश्य बताया है। तत्पश्चात् प्रो. डा. वत्सला आचार्य द्वारा लिखित **'अभिनव परम्परा का अभिराम काव्योपक्रम'** शोधलेख में मुक्तक चित्रकाव्य 'नतिकति' में वर्णों से श्लोक को निर्मित कर नवीन परम्परा का विमोचन किया है। श्रीमती डॉ. मनीषा शर्मा द्वारा लिखित **'ब्रह्माण्डे संस्कृतभाषायाः योगदानम्'** लेख में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में संस्कृत भाषा के योगदान एवं महत्त्व को उजागर किया है।

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' द्वारा लिखित **'प्राचीन भारत के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र'** नामक लेख में प्राचीन भारत के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रों तथा उनकी उपलब्धि के बारे में बताया है। तत्पश्चात् श्रीमती प्राची बटवाड़ा द्वारा लिखित **'NEP 2020: Addressing Challenges and Opportunities in Teacher Education'** शोधलेख में शिक्षा नीति-2020 में टीचर एजूकेशन में आने वाली चुनौतियों का उल्लेख किया है। स्व. डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के **'राष्ट्रोपनिषत्'** के कतिपय पद्य प्रकाशित किये गये हैं, जो गुरुशिष्य परम्परा के गौरव को प्रदर्शित करने के साथ साथ आत्मचिन्तन की प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं। डॉ. खुशबू जैन द्वारा लिखित **'Impact of Artificial Intelligence (AI) on Education '** शोधलेख में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस द्वारा छात्रों की सीखने की शैली और गति अनुरूप ढलकर उनके लिए अनुकूलित सीखने के बारे में बताया गया है।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने हेतु उत्साहशील होंगे।

शुभकामनाओं सहित....

प्रधान संपादक - डॉ. मनीषा शर्मा

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

इष्ट अन्न ही उपयुक्त

डॉ. विश्वावसु गौड
असिस्टेंट प्रोफेसर,
महात्मा ज्योतिबा फुले आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, चौमू, जयपुर (राजस्थान)

राष्ट्रपति-सम्मानित प्रो.वैद्य बनवारी लाल गौड
पूर्व कुलपति
डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जोधपुर

विशिष्ट शब्द- इष्ट, अन्न, उपहित, युगानुरूपसन्दर्भ, प्रीणाति (तर्पयति), प्रतिक्षण क्षीयमाण, पञ्चोष्माणः, अनुपहत्य प्रकृतिम्।

स्वास्थ्य-संरक्षण को प्राथमिकता प्रदान करने वाले आयुर्वेद की वर्तमान में उपलब्ध प्रमुख संहिताओं में चरकसंहिता एवं सुश्रुतसंहिता का प्रमुख स्थान है, ये दोनों ही संहिताएं सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध हैं तथा समय-समय पर हर युग में प्रबुद्ध व्याख्याकारों ने इन पर व्याख्याएं लिखकर उनकी युगानुरूपसन्दर्भ में उपयोगिता में अभिवृद्धि की है। इन संहिताओं में दो प्रकार का वर्णन उपलब्ध है, जिसमें पहला वर्णन सैद्धान्तिक रूप से है जो कि तब से लेकर अब तक इसी रूप में प्रचलित है, दूसरा स्वरूप व्यावहारिकता का है जिसमें व्यवहार तो सिद्धान्तानुमत ही है लेकिन देश-काल-परिस्थिति के अनुसार समय-समय पर इसमें परिवर्तन होता आया है।

आचार्य के अनेक प्रकार के स्वास्थ्यसंरक्षणसम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रथम स्वरूप आहार से सम्बन्धित है क्योंकि यह शरीर पाञ्चभौतिक है और निरन्तर प्रतिक्षण क्षीयमाण स्वरूप वाले इस शरीर का प्रतिदिन हितस्वरूप में पोषण परमावश्यक है। आहार से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त "अन्नमिष्टं ह्युपहितम्" है। इस छोटे से नीतिनिर्देशक सिद्धान्त में सबसे पहले इष्ट अन्न ही ग्रहण करने का निर्देश है, यथा-

अन्नमिष्टं ह्युपहितमिष्टैर्गन्धादिभिः पृथक्।

देहे प्रीणाति गन्धादीन् घ्राणादीनीन्द्रियाणि च।। (चरक. चिकित्सा. 15/12)

"अन्नमिष्टं ह्युपहितम्" में अन्न का तात्पर्य है आहार। "अद्यते इति अन्नम्" अर्थात् जो खाया जाता है वह अन्न है। यह "अद भक्षणे" धातु से सम्पन्न पद है, पूर्ण रूप से लिए जाने वाले आहार का ग्रहण अन्न पद से हो जाता है,

ISSN : 3048-6173

जिसमें शूकधान्य, शमीधान्य तथा दुग्ध के सभी विकार जिनमें दही, तक्र, छच्छिका आदि सभी का (गोरसवर्ग का) ग्रहण हो जाता है। साथ ही मांसवर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग, हरितवर्ग, मद्यवर्ग, अम्बुवर्ग, इक्षुविकारवर्ग, कृतान्नवर्ग एवं आहार के संस्कार में प्रयुक्त होने वाले अनेक प्रकार के द्रव्यों का (आहारयोगिवर्ग का) ग्रहण कर लिया जाता है।

यहाँ प्रयुक्त इष्ट पद अन्न का विशेषण है, इसका तात्पर्य है आहार अभीष्ट (इच्छित) एवं प्रिय लगने वाला होना चाहिए, लेकिन अभीष्ट होने के साथ-साथ हितकारी स्वरूप भी होना आवश्यक है। प्रिय होते हुए भी पथ्य या हितकर नहीं है तो वह शरीर के लिए स्वास्थ्यसंरक्षणपरक न होकर रोगकारक होता है। प्रिय और हितत्व ये दोनों इष्ट पद में अंतर्निहित हैं। उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए चक्रपाणि ने यही अर्थ करना अधिक उपयुक्त माना है, यथा-

इष्टशब्देनेह प्रियं हितं चोच्यते न प्रियमात्रम्, अहितस्य प्रियमात्रस्य न देहव्यवस्थितिः गन्धादितर्पकत्वं च भवति; उपहितमिति उपयुक्तम्| इष्टैरिति प्रियहितैः गन्धरसरूपस्पर्शशब्दैः। (चक्रपाणि)।

आयुर्वेद में दार्शनिक भावों को भी पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त किया है अतः दार्शनिक दृष्टि से शरीर को आयुर्वेद में भी 24 तत्त्वों से युक्त मानते हुए इन 24 तत्त्वों में परिगणित इन्द्रियों का पाञ्चभौतिकत्व स्वीकृत किया है। वे इन्द्रियाँ भी प्रतिक्षण क्षीयमाण हैं, अतः आहार से उनका भी पोषण स्वीकृत किया गया है, यह आयुर्वेद का वैशिष्ट्य है। उपनिषद् भी कहते हैं कि- "अन्नं वै प्राणाः"। अन्न से इन्द्रियों का पोषण होने के क्रम में लौकिक धारणा भी यही है कि - जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। मन सम्पूर्ण इन्द्रियों का प्रतिनिधित्व करता है, अतः मन की पुष्टि का तात्पर्य सम्पूर्ण इन्द्रियों की पुष्टि ही है। अपनी व्याख्या में चक्रपाणि ने भी इन्हीं भावों को अभिव्यक्त किया है, यथा-

अत्र यद्यपि हितत्वमेव गन्धादीनामाहारगतानां देहगतगन्धादिपोषणे प्रधानं, तथाऽपि प्रियत्वमप्याहारगतगन्धादीनां तदात्वोपकारकतया ग्रहीतुं प्रियत्वहितत्वयोर्द्वयोरप्युपादानं कृतम्| देहे प्रीणाति गन्धादीनिति देहश्रितान् गन्धादीन् पोषयति| तथा घ्राणादीनि च घ्राणदर्शनरसनस्पर्शनश्रोत्राणि इष्टैर्गन्धादिभिः प्रीणाति तर्पयति, पोषयतीति यावत्| इन्द्रियाण्यपि हि पाञ्चभौतिकान्यस्मद्दर्शने; तानि च प्रतिक्षणं क्षीयमाणानि।।(चक्रपाणि)

यदि अपथ्यस्वरूपक अहित आहार को जो कि किसी भी कारण से व्यक्ति को अभीष्ट है (प्रिय है) उससे शरीर अवस्थित नहीं होता है तथा शरीरस्थ तत्त्वों की व्यवस्थित रूप से पुष्टि या पूर्ति भी उससे नहीं हो पाती है।

"अन्नमिष्टं ह्युपहितम्" में प्रयुक्त किया गया तीसरा शब्द है "उपहित", जिसका तात्पर्य है "उपयुक्त"। इस उपयुक्त पद में रस, रूप, गन्ध, स्पर्श इत्यादि से युक्त आहार तथा शरीरस्थ सम्पूर्ण तत्त्वों का पोषण करने में समर्थ आहार

ISSN : 3048-6173

होने के साथ-साथ मात्रा इत्यादि में भी उपयुक्तता होने का ग्रहण हो जाता है। इसके साथ ही उस आहार में देश, काल, सात्म्य इत्यादि अनेक प्रकार के भावों की अनुकूलता होना परमावश्यक है। इस प्रकार का लिया गया आहार शरीरस्थ, दोषों, धातुओं एवं इन्द्रियों के साथ-साथ सभी तत्त्वों का तर्पण करता है (पोषण करता है) और इसके अतिरिक्त व्यवस्थित रूप से सार भाग का और मल भाग का भी विभजन होता है। अतः आहार का उपयुक्त स्वरूप में प्रयोग किया जाना चाहिए, यह आचार्य चरक का प्राथमिक निर्देश है जो कि मूल उपदेष्टा भगवान् आत्रेय और उनके शिष्य अग्निवेश द्वारा रचित अग्निवेशतन्त्र के प्रतिसंस्कृत रूप चरकसंहिता में यह वाक्य व्यवस्थित है।

इस क्रम में आचार्य यह निर्देश देते हैं कि जिस आहार को हम ग्रहण करते हैं उसमें पृथक्- पृथक् प्रकार के तत्त्वों की स्थिति होती है और उन तत्त्वों का शरीर में व्यवस्थित पाचन करने के लिए पृथक्-पृथक् प्रकार की अग्नियों की व्यवस्था है जिन्हें वर्तमानकालीन व्यवस्थाओं में पाचक रस कहा जाता है। यह शरीर पाञ्चभौतिक है इसके पोषण के लिए जिस आहार का ग्रहण किया जाता है वह आहार भी पाञ्चभौतिक होता है और गृहीत किए गए उस आहार का शरीर में पाचन करने के लिए पाँच प्रकार की महाभूताग्नियों की तथा सात प्रकार की धात्वग्नियों की और एक जाठराग्नि की व्यवस्था स्वीकृत की गई है, ये तेरह प्रकार की अग्नियाँ गृहीत किए गए आहार का सम्यक् पाचन करती हैं, इस क्रम में महाभूताग्नियों का निर्देश करते हुए चरकसंहिता में कहा गया है कि-

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः।

पञ्चाहारगुणान्स्वान्स्वान्पार्थिवादीन्पचन्ति हि ।। (च.चि.15/13)

इसका भावार्थ यही है कि गृहीत किए गए पार्थिव इत्यादि तत्त्वों से युक्त पाँच प्रकार के आहार का भौम इत्यादि पाँच प्रकार की अग्नियाँ सम्यक् प्रकार से पाचन करती हैं।

ये सभी अपने-अपने तत्त्वों से सम्बन्धित गृहीत आहार पर अपना अपना पाचन-सम्बन्धी कार्य करके व्यवस्थित रूप से सातों धातुओं का पोषण करती हैं, इस क्रम में प्रसाद भाग से धातु और किट्टभाग से मलों का पोषण एवं विभाजन होता है इस सम्बन्ध में आचार्य संक्षेप में यही निर्देश करते हैं, यथा-

सप्तभिर्देहधातारो धातवो द्विविधं पुनः।

यथास्वमग्निभिः पाकं यान्ति किट्टप्रसादवत् ।। (च.चि.15/15)

आहार के पाचन की इस प्रक्रिया में गृहीत आहार पर सबसे पहले जाठराग्नि का कार्य प्रारम्भ होता है, त्रयोदशाग्नियों में वही प्रमुख अग्नि है तथा अन्य सभी अग्नियों को यही बल प्रदान करती है, आचार्य कहते हैं कि-

ISSN : 3048-6173

इति भौतिकधात्वन्नपक्तॄणां कर्म भाषितम्।।

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तॄणामधिपो मतः।

तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः।। (च.चि.15/38-39)

इसलिए इस प्रधान अग्नि जाठराग्नि को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण तत्त्वों से युक्त जाठराग्नि के अनुकूल आहार का ग्रहण करना परम आवश्यक है, आचार्य का निर्देश है कि-

तस्मात्तं विधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः।

पालयेत् प्रयतस्तस्य स्थितौ ह्ययुर्बलस्थितिः।। (चरक. चिकित्सा. 15/40)

इसलिए आहार का विधिवत् ग्रहण करना चाहिए तथा उपयुक्त आहार का ग्रहण करना चाहिए और इस अग्नि के लिए प्रयुक्त इन्धन का स्वरूप जिसमें हो ऐसे हितकारक आहार का ग्रहण करना चाहिए। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए जाठराग्नि का परिपालन परमावश्यक है क्योंकि शरीर की आयु की और शरीर के बल की स्थिति इस जाठराग्नि पर ही निर्भर है|

दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो यह शरीर 24 तत्त्वों या 25 तत्त्वों का बना हुआ है जिसकी दर्शन-शास्त्रों की दृष्टि से विस्तृत व्याख्या की गई है लेकिन सामान्य बोलचाल की भाषा में कहते हैं कि यह शरीर पञ्चमहाभूतों से बना हुआ है। आयुर्वेद में भी पञ्चमहाभूतों के साथ आत्मा के संयोग को जीवित शरीर स्वीकार किया गया है। इसकी "शरीर" संज्ञा इसलिए है कि इसमें निरन्तर कुछ न कुछ शीर्णन अर्थात् क्षय होता रहता है, अतः इसकी पूर्ति के लिए आहार ही एकमात्र साधन है।

यह शरीर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि पाञ्चभौतिक है अतः शरीर में जो कुछ भी क्षय होता है उसकी पूर्ति के लिए प्राणी इस सृष्टि में स्थित पञ्चमहाभूतों के तत्त्वों से पूर्ति करता है। यह एक सामान्य प्रक्रिया है जिससे प्राणी निरन्तर शरीरस्थ क्षय की पूर्ति करता हुआ जीवनपर्यन्त प्राणयात्रा सम्पादित करता है | लेकिन इसके लिए यह आवश्यक है कि जितना क्षय हुआ है उसकी पूर्ति के लिए उसी अनुपात में आहार में उन तत्त्वों का ग्रहण किया जावे। यदि इससे कम या अधिक उन तत्त्वों को आहार के माध्यम से या अन्य किसी भी माध्यम से गृहीत किया जाता है तो वे शरीर में दोषों एवं धातुओं का वैषम्य उत्पन्न करके विकार उत्पन्न कर देते हैं।

शरीर के प्रतिदिन होने वाले क्षय की पूर्ति के लिए सबसे प्रमुख साधन आहार है जिसे व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ग्रहण करता है, लेकिन इस इच्छा में उसका परिणामपरक स्वयं का अनुभव एवं परम्परागत आहार के ग्रहण

ISSN : 3048-6173

का स्वरूप नियत रहता है। यह देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार उसके प्रभाव को जानकर सुनिश्चित किया जाता है । आहार सर्वदा एक ही प्रकार का ग्रहण नहीं किया जाता, इसमें विभिन्न परिस्थितियाँ प्रभावी होती हैं | यदि व्यक्ति नियमित रूप से व्यवस्थित आहार को ग्रहण करता रहे तो उससे वह सर्वदा अपने शरीरस्थ तत्त्वों को एक नियत मात्रा में बनाए रखने में सफल होता है।

आहार को प्राणियों का प्राण कहा गया है। वह आहार प्रत्येक शरीर में स्थित जाठराग्नि को ध्यान में रखकर उसके अनुरूप किया जाता है। वर्तमान काल में आहार को ग्रहण करने में कुछ विशेष प्रकार के दोष समाविष्ट हो गए हैं जिनके कारण व्यक्ति का स्वास्थ्य व्यवस्थित नहीं रह पाता है, अतः नियत आहार को व्यवस्थित रूप से ग्रहण करना परमावश्यक है। आचार्य कहते हैं कि-

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौ प्रतिष्ठिताः|

अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्ज्वलति व्येति चान्यथा || (च.सू. 27/342)

अर्थात् बल, आरोग्य, आयु और प्राण ये सभी शरीरस्थ जाठराग्नि के आश्रित रहते हैं। यह अग्नि अन्नपानरूपी इन्धन से जलती है (प्रज्वलित होती है) अन्यथा नष्ट हो जाती है, जाठराग्नि यदि व्यवस्थित है तो गृहीत किए गए आहार के माध्यम से ये सभी शरीरस्थ तत्त्व पुष्ट होकर प्राण को व्यवस्थित रखते हैं, अतः यह आवश्यक है कि जाठराग्नि को ध्यान में रखकर मात्रापूर्वक आहार किया जाना चाहिए। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक्-पृथक् स्वरूप का है, सभी के लिए सर्वदा एक ही मात्रा निश्चित नहीं की जा सकती। अतः कितनी मात्रा में आहार लिया जाए इसका निश्चय व्यक्ति आहार के ग्रहण करने के बाद होने वाले परिवर्तनों के आधार पर स्वयं निश्चित करता है।

उपयुक्त मात्रा वह मानी जाती है जो एक नियत मात्रा में आहार कर लेने के बाद वह शरीर की प्रकृति को किसी भी प्रकार से हानि पहुँचाए विना एक नियत समय पर पाक को प्राप्त हो जाए |यथा-

यावद्ध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाणं वेदितव्यं भवति ।।(च.सू.5/4)

अपने इस लक्षण के आधार पर व्यक्ति अपने आहार की मात्रा स्वयं निश्चित कर लेता है, यह उसे परिस्थितियों के अनुसार बार-बार करना पडता है, जैसे- अधिक व्यायाम, परिश्रम आदि करने पर उसकी जाठराग्नि तीव्र होती है अतः उसे अधिक मात्रा में आहार लेना पड़ता है तथा देश और ऋतु के अनुसार भी अग्नि के तीव्र या मन्द होने का प्रभाव पड़ता है, जैसे- सर्दियों में जाठराग्नि तीव्र होती है और गर्मी एवं वर्षा में जाठराग्नि मन्द रहती है। इसी तरह शीत

ISSN : 3048-6173

देशों में एवं युवावस्था में जाठराग्नि तीव्र होती है और उष्ण प्रदेशों में तथा वृद्धावस्था में जाठराग्नि देश एवं वय के प्रभाव से मन्द होती है, अतः उसी के अनुरूप आहार ग्रहण किया जाता है।

इसलिए जिस व्यक्ति के जितनी मात्रा निर्विकार स्वरूप वाली होती है उस व्यक्ति के लिए वही मात्रा माननी चाहिए| जिस एक व्यक्ति के लिए जो मात्रा निश्चित की गई होती है वही मात्रा इसी आयु वाले व्यक्ति के लिए इसी रूप में हो यह आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रत्येक पुरुष में अग्निबल का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त देश और परिस्थिति भी भिन्न-भिन्न होती है | किसी एक व्यक्ति में एक बार जो मात्रा निश्चित हो जाती है वही सर्वदा उसी रूप में सुनिश्चित रहे यह भी आवश्यक नहीं है क्योंकि काल के भेद से या व्यक्ति के व्यायाम इत्यादि के भेद से अथवा शरीर के विकारग्रस्त होने या अन्य किसी कारण से जाठराग्नि के स्वरूप में अन्तर आ जाता है तो भोजन की मात्रा में भी अन्तर करना पड़ता है।

भोजन का व्यवस्थित रूप से सही समय पर परिपाक हो जाने में केवल मात्रा का ही कारणत्व नहीं होता अपितु अन्य अनेक कारण भी होते हैं जिन्हें आचार्य चरक ने ८ भागों में विभक्त करके कहा है, यथा-प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोगसंस्था एवं उपयोक्ता ये आठ होते हैं।

इन सब का पृथक् पृथक् रूप से महत्त्व है और इनके पृथक् रूप से विस्तृत वर्णन की अपेक्षा भी है| यहाँ तो केवल इतना ही सङ्केत करना अपेक्षित है कि आहार का स्वरूप, मात्रा एवं परिपाक आदि सभी जाठराग्नि पर निर्भर होते हैं लेकिन जाठराग्नि पर भी अनेक प्रकार के कारणों का प्रभाव भी दिखाई देता है| ग्रहण किया जाने वाला आहार व्यक्ति की प्रकृति, देश के एवं काल के अनुरूप है या नहीं यह सब भी देखना पड़ता है। अतः इन सब को ध्यान में रखते हुए आहार का ग्रहण करना परम आवश्यक है |

भोजन सर्वदा मात्रापूर्वक ही करना चाहिए मात्रापूर्वक किया गया भोजन वात, पित्त एवं कफ इन तीनों दोषों को पीड़ित किए विना आयु की अभिवृद्धि करता है तथा सुखपूर्वक इसके प्रसादभाग एवं मलभाग का विभाजन होकर प्रसादभाग धातुओं की वृद्धि के लिए यथास्थान चला जाता है जबकि मलभाग का मूत्र और पुरीष के माध्यम से विसर्जन कर दिया जाता है।

इष्ट भोजन-

भोजन अच्छी लगने वाली गन्ध वाला, अच्छे वर्णवाला, अच्छे रस वाला और स्पर्श में भी अच्छा होना चाहिए। इस तरह का भोजन करने पर मन प्रसन्न रहता है | कुछ द्रव्य इस प्रकार के होते हैं जिनका निरन्तर प्रयोग किया

ISSN : 3048-6173

जा सकता है , ये शरीर के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त होते हैं और देश-काल-परिस्थिति की विभिन्नताओं में भी ये हानिकारक नहीं होते, यथा-

षष्टिकाञ्छालिमुद्गांश्च सैन्धवामलके यवान्।
आन्तरीक्षं पयः सर्पिर्जाङ्गलं मधु चाभ्यसेत्।। (च.सू. 5/12)

अर्थात् साठी चावल, शालि चावल, मूँग, सैन्धवनमक, आँवला, जौ, घी, दूध, शहद, अन्तरिक्ष का जल (विशुद्ध जल) इनका निरन्तर मात्रापूर्वक सेवन करना हितकर होता है।

दही एवं छाछ विधिपूर्वक देशकाल और शरीर को ध्यान में रखते हुए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। शाक और फल सर्वदा ऋतुजनित ही प्रयुक्त किए जाने चाहिए। इसी प्रकार से जिस ऋतु में जो अन्न उत्पन्न होकर प्राप्त होता है उसका विधिपूर्वक सेवन किया जाना चाहिए। गेहूँ का निरन्तर नियमित प्रयोग न करना ज्यादा उपयुक्त है। चना, मक्का, ज्वार, रागी, बाजरा आदि का प्रयोग उचित ऋतु में परम्परागत रूप से जिस प्रकार से किया जाता है उस तरह से करना अधिक हितकर है।

अहितकर भोजन निषिद्ध -

मात्रापूर्वक हितकारक भोजन करना जितना आवश्यक है उतना ही अधिक आवश्यक अहितकर भोजन का निषेध करना भी है। निरन्तर अनेक दिनों तक हितकर भोजन करता हुआ व्यक्ति जिस लाभ को प्राप्त करता है अहितकर भोजन केवल एक बार या एक दिन करने पर ही उससे अधिक हानि पहुँचाने की सामर्थ्य रखता है। अतः अहितकर भोजन सर्वथा निषिद्ध है। कुछ इस प्रकार के निर्मित भोजन भी हैं जो तात्कालिक रूप से अभीष्ट और प्रिय प्रतीत होते हैं उन्हें यदा-कदा प्रयुक्त करना, अल्प मात्रा में प्रयुक्त करना जिह्वा के लौल्य को संतुष्ट करना हो सकता है लेकिन अधिक मात्रा में और बार-बार किया गया वह भोजन निश्चित रूप से हानि ही करता है। अतः जो इस देश काल और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त नहीं है ऐसा भोजन एक बार और अल्प मात्रा में भी क्यों किया जाए? इस पर विचार करना अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में यही कहना अधिक उपयुक्त है कि उन्हें वर्जित करना ही स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है।।

वर्तमानकाल में खानपान में अत्यधिक परिवर्तन आ गया है जिसमें फास्ट फूड, पैक्ड फूड एवं रेडी टू ईट का अत्यधिक प्रचलन हो गया है । इन सभी में भोजन को अधिक समय तक संरक्षित रखने के लिए अनेक अनुपयुक्त प्रक्रियायें करनी पड़ती हैं तथा हानिकारक रासायनिक पदार्थों का मिश्रण किया जाता है, अतः इनका प्रयोग सर्वदा ही हानिकारक होता है। इनसे जितना अधिक बचा जा सके उतना बचना चाहिए।

ISSN : 3048-6173

आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने भोजन के निषेधात्मक स्वरूप में कहा है कि गरिष्ठ भोजन, पीठी के बने पदार्थ (मूँग इत्यादि को भिगोकर उनसे पीस कर बनाए गए या मैदा के बनाए हुए पदार्थ) और चिवड़े ये कभी भी भोजन करने के बाद नहीं खाने चाहिए। इन्हें यदि खाना हो तो मात्रापूर्वक भोजन के साथ ही ले तथा उस अनुपात में भोजन कम लेना चाहिए | इसके अतिरिक्त मांस, पनीर, मछली, दही और उड़द आदि का निरन्तर अभ्यासपूर्वक अधिक सेवन नहीं करना चाहिए, यदा-कदा सेवन करना निषिद्ध नहीं है। आजकल अधिकांश लोग रात को दही खाते हैं जबकि रात को दही खाना पूर्णतया निषिद्ध है।

विधिविहित आहार-

भोजन करने से पहले स्वच्छ वस्त्र धारण करने चाहिए एवं हाथ-पैरों का अच्छी प्रकार से प्रक्षालन करने के बाद ही पवित्र स्थान एवं पवित्र आसन पर बैठकर भोजन करना सर्वदा हितकर होता है|

आचार्य चरक अच्छे गुण प्रदान करने वाले भोजन के स्वरूप की ओर सङ्केत करते हुए कहते हैं कि-

तत्रेदमाहारविधिविधानमरोगाणामातुराणां चापि केषाञ्चित् काले प्रकृत्यैव हिततमं भुञ्जानानां भवति- उष्णं, स्निग्धं, मात्रावत्, जीर्णे वीर्याविरुद्धम्, इष्टे देशे, इष्टसर्वोपकरणं, नातिद्रुतं, नातिविलम्बितम्, अजल्पन्, अहसन्, तन्मना भुञ्जीत, आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्।।(चरक. विमान. 1/24)

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि भोजन सर्वदा उष्ण ही करना चाहिए, उष्ण का तात्पर्य है ताजा बना हुआ और जिसे सामान्यतया उष्ण रूप में ही खाया जाता है वह भोजन, यह भी बहुत अधिक गर्म नहीं होना चाहिए अपितु सुखोष्ण होना चाहिए, इस तरह का किया गया उष्ण भोजन करते समय स्वादिष्ट लगता है, भोजन करने के बाद अग्नि को अनुकूल रूप में अभिवृद्ध करता है, जल्दी ही यथासमय जीर्ण हो जाता है (पच जाता है) तथा वायु का अनुलोमन करता है और बढे हुए श्लेष्मा का ह्रास करता है|

भोजन स्निग्ध करना चाहिए। रोटी, चावल, दाल, शाक इत्यादि आहारद्रव्यों के साथ यथावश्यक रूप से जिसमें जो उपयुक्त हो उसके अनुसार घी, मक्खन तैल आदि का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार से किया गया भोजन स्वादिष्ट लगता है तथा अग्नि को बढाता है, यथासमय जीर्ण हो जाता है। यह भी वायु का अनुलोमन करता है। शरीर को पुष्ट करता है, इन्द्रियों को दृढ करता है, शरीर के बल की वृद्धि करता है और त्वचा में कान्ति उत्पन्न करता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आहार का जो परम्परागत स्वरूप है और जो परम्परागत विधि है उसका परिपालन किया जाना चाहिए, क्योंकि यह परम्परा वर्षों के अनुभव से देश, काल परिस्थिति आदि को ध्यान में

ISSN : 3048-6173

रखकर सुनिश्चित की गई है। नियत समय पर मात्रापूर्वक किया गया परम्परागत भोजन सर्वदा हितकारी होता है यही शरीर का स्वास्थ्यानुवर्तन करता है जिससे शरीर पुष्ट होता हुआ जीवनपर्यन्त अवस्थानुसार बलवान् बना रहता है, इसलिए अन्न अर्थात् आहार का अभीष्ट होना, हितकर होना और उपयुक्त स्वरूप में गृहीत करना शरीर के लिए सर्वदा हितकर होता है। अतः आचार्य कहते हैं- "अन्नमिष्टं ह्युपहितम्"।

संदर्भ ग्रंथ-

1. चरकसंहिता, आयुर्वेददीपिका टीका, संपादक यादव जी त्रिकम जी आचार्य

2. चरकसंहिता प्रथम खण्ड, एषणा टीका, प्रमुख अन्वेषक एवं अनुवादक- प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड, प्रकाशक- राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली

3. चरकसंहिता, द्वितीय खण्ड, एषणा टीका, प्रमुख अन्वेषक एवं अनुवादक- प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड, प्रकाशक- राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली

4. चरकसंहिता, तृतीय खण्ड, एषणा टीका, प्रमुख अन्वेषक एवं अनुवादक- प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड, प्रकाशक- राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली

5. चरकसंहिता, चतुर्थ खण्ड, एषणा टीका, प्रमुख अन्वेषक एवं अनुवादक- प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड, प्रकाशक- राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली

6. अमरकोशः, रामाश्रमी टीका, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

7. स्वस्थवृत्तविवेचन, लेखक- प्रो. बनवारी लाल गौड एवं डॉ. विश्वावसु गौड

8. संस्कृत-हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे, प्रकाशक- न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन दिल्ली

ISSN : 3048-6173

कथा-परम्परा के उद्गम का वैदिक परिदृश्य

प्रो. युगल किशोर मिश्र
निवृत कुलपति
ज. गु. रा.रा.स.वि.

किसी अभिधेय की कौतुकपूर्ण सरस एवं हृदयावर्जक ढंग से प्रबन्धकल्पना जो विस्मयवर्धक हो, वही साहित्य में 'कथा' नाम से अभिहित होती है। भारतीय वाङ्मय में वैदिकवाङ्मय से लेकर परवर्ती साहित्य तक इस शैली का पर्याप्त एवं प्रचुर समागम दृष्टिगोचर होता है जो विश्व-साहित्य को भारत की अद्भुत देन है। 'आख्यान', 'उपाख्यान' आदि 'कथा' के ही सहकारी भेद माने जा सकते हैं। वैदिकसंस्कृत एवं लौकिकसंस्कृत से निःसृत यह 'कथा' गंगा का अविरल प्रवाह विशाल साहित्य के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है जिसका प्रभाव परवर्ती भारतीय साहित्य पर ही नहीं अपितु भारतेतर साहित्य पर भी व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है।

भारतवर्ष के तीन बड़े महनीय सम्प्रदायों वैदिक, जैन तथा बौद्ध ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार एवं बोधगम्य बनाने के लिये कथा तथा आख्यान माध्यम का प्रभूततया उपयोग किया है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेदसंहिता में इसके बीज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने लगते हैं। ऋग्वेद के 'संवादसूक्त' (सरमा पणि संवाद, विश्वामित्र नदी संवाद, पुरुरवा-उर्वशी संवाद, यम-यमी संवाद आदि) इसके उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त स्तुतिपरक अन्य सूक्तों में भी विभिन्न देवों के विषय में अनेक मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद आख्यानों की उपलब्धि होती है। ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् भागों में क्रमशः यह वृद्धिंगत होती हुई कथा-आख्यान-परम्परा वेदाङ्गों, विशेषतः 'निरुक्त' में आचार्य यास्क (6 ठी शताब्दी ई.पू.) द्वारा विस्तारित की गई।

इसीप्रकार आचार्य शौनककृत "बृहद्देवता" ग्रन्थ में, कात्यायन सर्वानुक्रमणी की षड्गुरुशिष्यकृत "वेदार्थदीपिका" व्याख्या में तथा तदनुसार वेदभाष्यकार आचार्य सायण (14 वीं शताब्दी) के चारों वेदों के भाष्यों में स्थान स्थान पर आख्यानों की उपलब्धि है। आचार्य सायण के पश्चात् गुजरात के द्याद्विवेद नामक विद्वान् ने समस्त वैदिक कथाओं का अध्ययन कर उनसे प्राप्त शिक्षाओं को प्रदर्शित करते हुए "नीतिमंजरी" नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इस ग्रन्थ का रचनाकाल 1400 ईस्वी के आसपास अनुमानतः रखा गया है। श्लोकबद्ध इस ग्रन्थ में श्लोक के

ISSN : 3048-6173

पूर्वार्द्ध में नीतिकथन है तथा उत्तरार्थ में वैदिक दृष्टान्ती द्वारा उसका पोषण है। इन वैदिक कहानियों का रूप पुराणों में, रामायण में और महाभारत में आने पर अवश्यमेव किंचित् परिवर्तित एवं विस्तृत हो गया है, परन्तु कथानक का मूल एक ही है।

साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपयोगी अंश "कथा" एवं "नीति" के नाम से जाना जाता है। कथा एवं तदन्तर्गत नीति के द्वारा मानवजाति को सृष्टि में रहने का तरीका, व्यवहार-ज्ञान एवं मनोविकारों का निराकरण होता है। यह ध्यातव्य है कि साहित्य में लोक के उभयपक्षीय सिद्धान्तों (1) सच बोलो किन्तु प्रिय बोलो (सत्यं ब्रूयात्-प्रियं ब्रूयात्) (2) अप्रिय सत्य नहीं बोलना (न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्) का सम्मिश्रण है। संस्कृत में 'सूक्ति' या 'सुभाषित' नाम से भी इसे व्यवहृत किया गया है। वस्तुतः 'नीति' शब्द संस्कृत में णीञ्-प्रापणे धातु से निष्पन्न होता है जिसका लाक्षणिक अर्थ है- 'सन्मार्ग पर ले जाना'। जो अभीष्ट की प्राप्ति तक ले जाये या पहुँचाये उसे 'नीति' कहते हैं (एवं कर्तव्यमेवं न कर्तव्यमित्यात्मको यो धर्मः सा नीतिः)। 'कथा' का पार्यन्तिक स्वरूप या फल भी यही है। अतएव "पञ्चतन्त्र" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में कहा गया "कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते" अर्थात् 'कथा' (कहानी) के माध्यम से बालमन को सुसंस्कृत करने हेतु "नीति" का ज्ञान कराया जाता है"। फलतः यहीहमें सही मार्ग पर चलना सिखाती है और गलत मार्ग या उपेक्षा-भाव को प्रतिबन्धित करती है, वही 'कथा' या 'नीति' है।

महाभारत के शान्तिपर्व (अध्याय 59)' में 'कथा' या 'नीति-शास्त्र' का आद्य प्रवर्तक ब्रह्मा को बतलाया गया है। अतः पौराणिक मान्यता के अनुसार सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा के मुख से ही वेदों का प्रादुर्भाव हुआ अतः कथा या नीति-शास्त्र का इदम्प्रथमतया उत्स 'वेदों' को माना जाता है। वैदिक संहिताग्रन्थों में 'कथा' की उपलब्धि बीज रूप में या संकेतात्मक रूप में होती है किन्तु ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्-ग्रन्थों में इसका विस्तृत रूप दिखलाई पड़ने लगता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रतिपादित वैदिक 'अश्वमेध' संज्ञक याग में 'पारिप्लवशंसन' एवं 'ब्रह्मोथकथन' नामक कर्म कथा-परम्परा का एक प्रकार से बीजारोपण है। सर्वप्रथम ऋग्वेद संहिता की ऋचाओं में संकेतित आख्यान पर दृष्टिपात करते हैं। इन अतिलघु आख्यानों (कथाओं) में मानवीय संवेदनाओं, एवं कर्तव्यबोध का संकेत या उपदेश है।

(क) 'संहिता' भाग की कतिपय प्रेरक आख्यायिकायें

कथा-1 ऋषिका लोपामुद्रा की अन्तर्व्यथा (प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः)

बात उस कालखण्ड (सतयुग) की है जब सृष्टि में 'तपस्' का साम्राज्य था। ऋग्वेद' के प्रथम मण्डल के 179 वे सूक्त के प्रथम दो मंत्रों की ऋषि 'लोपामुद्रा' है। लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी हैं। दक्षिण भारत में आर्यसंस्कृति के प्रसार का श्रेय महर्षि अगस्त्य को दिया जाता है। पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार अगस्त्य उन्नतशिखर विन्ध्याचल

ISSN : 3048-6173

के गुरु है तथा उनके आदेश से पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचल अभी तक अपने मस्तक को अवनत किये महर्षि अगस्त्य की दक्षिण यात्रा से लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। ऐसे महान् ऋषि की महानता की पृष्ठभूमि में निश्चय ही पति के अभ्युदय के लिए स्वयं को निःस्व बना देने वाली पत्नी लोपामुद्रा रहीं हैं क्योंकि भारतीय नारी ने अपनी शक्ति और ऊर्जा के समग्र कोश को निःस्वार्थभाव से इन्हीं के मङ्गल के लिये रिक्त किया है।

पति-प्रेम, घर-परिवार के इन्द्रधनुषी सपने संजोये लोपामुद्रा का अगस्त्य से विवाह हुआ। महर्षि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हुये भी तप-साधना में लीन रहे। साधना-पथ पर अग्रसर अपने महान् पति की सेवा में समर्पित नववधू लोपामुद्रा पति की सेवा-शुश्रूषा करती रही। दिन और रात बीतते चले गये। ऋतुएँ आयी और गई। मधुमास भी प्रणय का सन्देश नहीं लाया। संवत्सर-दर-संवत्सर अतीत होते चले गये। कालस्रोत अपनी अबाध गति से बहता रहा। जब सत्य का साक्षात्कार कर देवसान्निध्य एवं देवकृपा से मण्डित ऋषि साधना के ऊर्ध्व लोक से लौकिक घरातल पर अवतरित हुए तब रुद्र वेग नद के समान 'काम' ने उनके हृदय को आप्लावित कर दिया। उन्होंने प्रणय निवेदन करते हुये अपनी पत्नी से कहा- "हे देवि लोपामुद्रा। पति के साथ संगत होओ"।

किन्तु पति की वह अभिगमेच्छा लोपामुद्रा को उच्छ्वसित नहीं कर पाई। अनजाने ही अन्तःकरण के किसी कोने में पुञ्जीभूत वेदना हृदय-द्वार को विदीर्ण कर उमड़ पड़ी। अगस्त्य को सम्बोधित करते हुए लोपामुद्रा ने कहा-

"अनेक वर्षों तक, उषा की प्रथम किरण से लेकर रात्रि तक (दोषावस्तः) आपकी सेवा में शक्ति का व्यय करती हुई मैं अब श्रान्त हो चुकी हूँ। जरिमा (वृद्धावस्था) शरीर-शोभा को म्लान कर देती है। अब पत्नी, पति से क्या अभिगम करे? (अपि नु पत्नी वृषणो जगम्यु)।

पुनः आगे कहा-

"पुरातन काल में भी जो ऋत (सत्यधर्म) के रक्षक ऋषि हुये हैं, जिन्होंने देवों के साथ मिलकर सत्य का अन्वेषण और कथन किया है, उन्होंने भी सृष्टि-धर्म का पालन करते हुये वीर्यसिञ्चन किया है। वे भी ब्रह्मचर्य का अन्त नहीं पा सके अर्थात् काम को जीत नहीं सके हैं (ते चिदवासुर्नह्यन्तमापु)। स्त्रियों ने उन वीर्यवान् ऋषियों को पति के रूप में वरण किया साध्वी ऋषिका लोपामुद्रा ने सनातन सृष्टि के प्रथम बीज "काम" के इस महत्त्व एवं सत्य का अनुभव महर्षि अगस्त्य को कराया। मर्यादाओं से बंधे "काम" के उपभोग के लिये आदर्शवय 'यौवन' है जब शरीर सुन्दर और मन उमङ्ग से भरा होता है।

ऋग्वैदिक साक्ष्य के अनुसार महर्षि अगस्त्य ने अपने वीर्यबल और देवकृपा से सन्तानों को उत्पन्न कर 'काम' और 'तप' दोनों का वरण किया। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या अगस्त्य, लोपामुद्रा के यौवन और उमंग को लौटा पाये थे?

ISSN : 3048-6173

क्योंकि अबाध गति से प्रवहमान काल कभी लौटता नहीं है। पुरुषप्रधान समाज में आज भी किसी आकर्षण एवं भौतिक चकाचौंध-कारणों से पुरुष-वर्ग दाम्पत्य जीवन में नारी की इस अन्तर्मया को नकारता या दुकराता है तो वैदिक अषिका लोपामुद्रा हर उस नारी के साथ दृढ़ता से बड़ी तथा पुरुष की तर्जना करती हुई दिखाई पड़ती है। कालान्तर में महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य "कुमारसंभवम्" में इसी कथा-बीज को लेकर कामदहन एवं रति-विलाप का मार्मिक एवं सुन्दर उपबृंहण किया होगा।

कथा-2 नारी जाति की महनीयता (ऋषिका अपाला-आत्रेयी)

देवोपासना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। मानव देवकृपा से सुख-समृद्धि, मनोभिलषित कामनाओं को प्राप्त करता है; यह अवधारणा ऋग्वैदिक मंत्रों में स्पष्टतया प्रतिबिम्बित है। दैवीकृपा से इसे प्राप्त करने का एक अच्छा उदाहरण ऋग्वेद के अष्टम मंडल (8.80.17 अंक) में जिसकी ऋषिका अपाला है इसप्रकार प्राप्त होता है-

प्राचीनकाल में अत्रि ऋषि की पुत्री ब्रह्मवादिनी "अपाला" का विवाह ऋषिपुत्र 'कृशास्व' से हुआ। विवाहोपरान्त 'अपाला' किसी कारण से त्वचा सम्बन्धी रोग (श्वेतकुष्ठ) से ग्रस्त हो गई। अपाला के पति ने सौन्दर्य में कलंक के कारण उसका परित्याग कर दिया। दुर्भाग्य पीड़िता अपाला ने पिता के आश्रम में रहकर त्वम्-दोष से मुक्ति पाने के लिये देवराज इन्द्र की आराधना प्रारंभ की। दीर्घकाल तक अपाला ने अनुष्ठान किया। एक दिन अपाला के मन में विचार आया कि इन्द्र को सोमरस सर्वाधिक प्रिय है, क्यों न मैं उन्हें सोम-रस अर्पित करूँ। यह विचारकर अपाला पर्वत से निकलने वाली नदी की ओर चली। मार्ग में चलते-चलते अपाला ने सोमवल्ली को ढूंढ निकाला। नदी में स्नान करने के पश्चात् लौटते समय सोमवल्ली के पास पहुंचकर अपाला ने सोमवल्ली से प्रार्थना की कि मैं तुम्हें इन्द्र के लिये अभिषुत करने हेतु लेना चाहती हूँ। तदनन्तर सोमलता को (हाथ से न टूट पाने के कारण) दांतों से काटा। दन्तधर्षणजन्य शब्द को सोम की अभिषव ध्वनि (रस निकालने की प्रक्रिया) समझकर उसी समय इन्द्र वहां उपस्थित हुए तथा अपाला से बोले "क्या यह सोम के अभिषव (रस निकालने की) ध्वनि है ? देवराज इन्द्र को सहसा न पहचानकर अपाला ने उत्तर दिया- मैं अत्रि ऋषि की पुत्री अपाला इस पार्वत्य प्रदेश में सोमवल्ली प्राप्त करने की इच्छा से आई तथा नदी में स्नान के पश्चात् सोम को दाँतों से चबाते हुए तोड़ा, यह उसी का शब्द है। यह सुनकर इन्द्र लौटने लगे तब अपाला ने उन्हें पहचान कर कहा-

"हे इन्द्र, आप वीर, कृपालु और दीप्तिसम्पन्न हो। सोमपान के लिये श्रद्धालु यजमान की प्रार्थना पर आप प्रत्येक गृह में जाते हैं तथा स्तुतियों के साथ भुने हुये जी (सत्तू) से युक्त हवि के साथ सोम-रस का ग्रहण करते हैं। क्या मेरे दांतों से अभिषुत सोम का पान नहीं करेंगे? (मार्ग में उपस्थित होने के कारण) मैं आपको सहसा नहीं जान पाई।

ISSN : 3048-6173

"अपाला" की इस निश्छल भक्तिपूर्ण प्रार्थना सुनकर इन्द्र ने अपाला के दातों से अभिपुत सोमरस को ग्रहण किया। सोमपान से हर्षित इन्द्र ने अपाला से वर मांगने को कहा। अपाला ने इन्द्र से कहा

हे देवाधिदेव इन्द्र, इन तीन संकल्पों को पूर्ण करने का अनुग्रह कीजिये -

1. मेरे पिता के केशरहित शिर (गंजेपन का दोष समाप्त होकर) केशयुक्त हो जांय।
2. मेरे पिता के खेत जो ऊषर हो गये हैं, वे उर्वर हो जांय।
3. मेरा त्वग्-दोष (सफेददाग का रोग) समाप्त हो जाय।

इन्द्र ने अपाला की पितृभक्ति, एवं निश्छलभाव पर प्रसन्न होकर तीनों कामनायें पूर्ण कर दीं।

ऋषिपुत्री आपाला का यह आत्मवृत्त भक्ति-भावना, श्रद्धा और विश्वास का अद्भुत निदर्शन तो है ही साथ ही 'पराया धन' मानी जाने वाली कन्यायें, पराये व्यक्ति को सौंप दिये जाने के बाद भी अपने पितृकुल के प्रति विशेष प्रेम का कैसे ध्यान रखती हैं तथा चिन्तित रहती हैं, इसका भी निदर्शन है। ऋषिपुत्री मन्त्रद्रष्ट्री अपाला की यह वैदिक आख्यायिका नारी हृदय की गहनतम संवेदनाओं से साक्षात्कार कराती हुई चिरन्तन सत्यों का उद्घाटन करती है।

कालान्तर में अपाला की यह आख्यायिका रामायण में राम के प्रति शबरी की निश्छल भावना का भी उपजीव्य बनी दिखलायी पड़ती है।

कथा-3 जल ही जीवन है (विश्वामित्र नदी संवाद)

पञ्चमहाभूतों में परिगणित 'जल-तत्त्व' सृष्टिरचना के उपादानों में प्रथम है। प्राणिमात्र को जीवन देनेवाली मातृभूता नदियां अपने अमृतमय जल से सृष्टि को आप्यायित करती हुई बिना थके, बिना रुके निरन्तर बहती हुई समुद्र से जा मिलती हैं। 'विश्वामित्र नदी संवाद' ऋग्वेद के तृतीय मंडल के 33 वें सूक्त में उपलब्ध है जो प्रवहमान नदियों के शाश्वत मनोभाव को अभिव्यक्त करता है जिसके प्रति आज का स्वाथी मानव उदासीन है। इस दृष्टि से यह वैदिक-संवाद विशेषतया मननीय है जो इस प्रकार है-

"ऋषि विश्वामित्र अपने शिष्य राजा पैजवन सुदास का यज्ञानुष्ठान सम्पन्न कराकर रव से विपाशा और शुतुद्रि (आज के सीमान्त कश्मीर पंजाब की) नदियों के संगम पर पहुँचे। नदियाँ अपने प्रबल वेग से उफनती हुई बह रही थीं। नदी को सकुशल पार करने की इच्छा से विश्वामित्र ने दोनों नदियों की स्तुति की और जल के वेग को कम करने की प्रार्थना की। नदियों ने कहा हे ऋक्षे! जलराशि से उमड़ती हुई हम दोनों, देवों द्वारा निर्धारित गन्तव्य-समुद्र की ओर जा रही हैं (एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः)। हमारा यह गमनरूप उद्योग रुकने वाला नहीं है फिर

ISSN : 3048-6173

आप किसलिये हमें पुकार रहे हैं। यह वचन सुनकर ऋषि विश्वामित्र अपना परिचय देते हुये नदियों से क्षण भर रुकने का आग्रह करते हैं ताकि वे पार हो सकें। तब नदियों ने अपने धर्म से विरत होने में असमर्थता व्यक्त करते हुये कहा कि हे महर्षे, नदियों को रोकनेवाले वृत्रासुर को मारकर वज्रबाहु इन्द्र ने हमें प्रवहमान किया है। सम्पूर्ण संसार के प्रेरक, सुन्दर रश्मियों वाले सविता देवता हमें पृथ्वी पर लाये हैं, उनकी आज्ञा से हम जलपूर्ण होकर प्राणिमात्र के कल्याण के लिये बह रहीं हैं, अतः हमारा रुकना संभव नहीं हैं।

तब ऋषि विश्वामित्र नदियों को प्रसन्न करने के लिये उनके जन्मदाता इन्द्र की स्तुति सुनाने लगते हैं। इन्द्रस्तुति सुनकर नदियाँ विश्वामित्र से कहती है हे स्तोता, आप अपने इन उद्घोषित वचनों को (काम पूरा हो जाने पर) विस्मृत न कर देना। आने वाले युगों में आपकी सन्तानों द्वारा हमारा ध्यान रखना तथा कभी अनादर न करना अपितु सेवा करना।

महर्षि विश्वामित्र प्रयोजनसिद्धि के प्रति तब आशान्वित होकर दोनों नदियों से अपने जलस्तर नीचा कर रथचक्र के अक्ष के नीचे से बहने की प्रार्थना करते हैं।

स्नेहरस से भरी नदियाँ सहृदयतापूर्वक ऋषि की प्रार्थना को स्वीकार करते हुये कहती हैं - हे महर्षे, हमने आपकी सारी बातें सुनी। आप दूर से आये हो। रथ और शकट के साथ गमन करो। जैसे शिशु को स्तनपान कराने के लिये माता झुकती है अथवा प्रिय का आलिंगन करने के लिये युवती झुक जाती है, वैसे ही हम भी आपके लिये अवनत होती हैं। ऋषि विश्वामित्र अपने रथ-शकट के लाव-लश्कर को लेकर पार हो जाते हैं।

नदियों के संवेदनशील कोमल हृदय को उन्मीलित करने वाला यह एक अद्वितीय सूक्त है जिसमें आगामी युगों के लिये इन स्रोतस्विनियों के प्रति मानवीय कर्तव्यों का निर्देश तो है ही साथ ही स्वार्थबुद्धि त्याग कर जल-तत्त्व के अन्धाधुन्ध अपव्यय, दूषित करने एवं दोहन करने की प्रवृत्ति को त्यागने की चेतावनी भी। नदियों के इन वचनों से मानव मनोविज्ञान का ज्ञान भी होता है। प्रायः मनुष्य अपना प्रयोजन सिद्ध होने के पश्चात् अपने उपकारकर्ता को भूल जाते हैं तथा स्वार्थान्ध होकर मनमाना आचरण करने लगते हैं। इस नैसर्गिक प्रवृत्ति की ओर नदियों द्वारा यहां संकेत किया गया है। जल से परिपूर्ण नदियों की अबाध-अविरल गति ही नदियों का जीवन है। बड़े-बड़े बांधों द्वारा नदियों का अवरोध, दूषित मल-जल को नदियों में बहाना एवं जलस्रोतों के प्रति निर्मम उपेक्षा भाव न केवल नदीधर्म का विरोधी है अपितु नदी के साथ मानव के लिये भी महाविनाश का वाहक है।

राष्ट्र की इन जीवन-रेखाओं के संरक्षण, इनके प्रति समर्पणयुक्त श्रद्धाभाव तथा जलचक्र के प्रवर्तन द्वारा नदियों को और इनके साथ ही मानवीय अस्तित्व को बचाया जा सकता है। आज से हजारों वर्ष पूर्व "विश्वामित्र नदी संवाद" के माध्यम से ऐसे महनीय भावों को अभिव्यक्त करने वाली ब्रह्मवादिनी ऋऋषिका समग्र विश्व के लिये वन्दनीय है।

ISSN : 3048-6173

(ख) ब्राह्मण-भाग की कतिपय प्रेरक आख्यायिकायें

कथा-४ सन्तोष एवं ईमानदार-श्रम ही वैभव का कारण (वामनविष्णु संमित यज्ञभूमि प्रविभाग कथा)

पुराकाल में प्रजापति की सन्ताने देव एवं असुर अपनी-अपनी श्रेष्ठता के लिये स्पर्द्धित हुए। स्पर्द्धा में देवगण निर्बल पड़ने लगे। तब असुरों ने सोचा, हम बलवत्तर हैं, अत: यह जगत् हमारा ही है।

असुरों ने आपस में विचार-विमर्श किया और तय किया कि क्यों न इस पृथ्वी को हम परस्पर में बांट लें और इस पर अपना सम्पूर्ण आधिपत्य कर लें तथा सुख से जीवन यापन करें। असुरगण बैल के चर्म से आपस में पृथ्वी को मापते-बांटते हुये पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर बढ़ने लगे।

यह वृत्तान्त देवों ने सुना और परस्पर सोचने लगे अरे, असुर तो पृथ्वी को वास्तव में बांट रहे हैं। चले हम भी जहां असुरगण पृथ्वी को बांट रहे हैं (क्योंकि) यदि हमको कोई भाग न मिला तो हम कहीं के न रहेंगे? ऐसा विचार कर देवगण 'वामन (बौने) विष्णु' को अपना अगुआ बनाकर असुरों के पास पहुंचे।

देवों ने असुरों से विनम्रतापूर्वक कहा पृथ्वी के इस बंटवारे में अपने साथ हमको भी सहभागी कर लीजिये। हमें भी कुछ भाग मिलना चाहिए। असुरों ने क्रोधित हो हीनता के भाव से कहा 'ठीक है, हम आपको केवल उतना ही भाग देंगे जितने में यह वामन विष्णु लेट सकें'। यद्यपि विष्णु वामन (ठिंगने कद के) थे परन्तु देवगणों ने असुरों के इस अनुचित एवं अन्यायपूर्ण प्रस्ताव का भी अनादर नहीं किया। देवों ने सोचा 'यह पृथ्वी का थोड़ा टुकड़ा भी मिल गया तो हम सन्तोष कर लेंगे कि बहुत मिल गया।

उन्होंने वामन-विष्णु (जो यज्ञस्वरूप थे) को पूर्व की ओर शिर कर लिटा दिया तथा मंत्रस्मरण के साथ तीन ओर से सीमांकित कर घेर दिया। देवों ने पृथ्वी के इस छोटे से भूखण्ड पर यज्ञशाला (देवयजन) का निर्माण किया तथा अग्नि प्रज्जवलित कर यज्ञोचित अर्चना और कर्मजनित श्रम करते रहे। इसप्रकार सत्कर्म एवं सन्मार्ग पर चलते-चलते कालान्तर में देवगणों ने समस्त भूमण्डल (पृथ्वी) के आधिपत्य को प्राप्त कर लिया। यतः सीमित भूखण्ड पर सन्तोष करते हुए उस पर देवयजन-वेदी या 'वेदिका' का निर्माण कर सन्मार्ग पर चलते हुये यज्ञभूमि के माध्यम से कालान्तर में समस्त पृथ्वी प्राप्त कर ली इसीलिये पूजाभूमि को 'वेदी' (विद्-प्रापणे धातु अर्थात् सब कुछ प्राप्त करा देने वाली) कहा जाता है।

ब्राह्मणभाग की इस सुन्दर आख्यायिका के माध्यम से मानवजाति को यह सन्देश दिया गया कि अन्यायी भाइयों के साथ कलह करने की अपेक्षा सन्तोषवृत्ति से सत्कर्म एवं सन्मार्ग पर चलते हुए कालान्तर में अकूत वैभव प्राप्त किया जा सकता है। अतएव लोक में कहा जाता है- "सन्तोषः परमं सुखम्"।

ISSN : 3048-6173

कथा (आख्यायिका) - 5 वाणी से मन की श्रेष्ठता - (वाङ्-मनस् संवाद)

पुराकाल में मन और वाणी में अपनी श्रेष्ठता के लिये विवाद हुआ। मन और वाणी दोनों अपने-अपने लिये कहने लगे कि मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ।

तब 'मन' ने तर्क देते हुए कहा कि "मैं तुझसे श्रेष्ठ हूँ; क्योंकि मेरे बिना विचारे तू कुछ कह नहीं सकती"। यतः तू मेरे किये का ही अनुसरण करती है, इसलिए मैं तुझसे श्रेष्ठ हूँ। इस पर वाणी ने कहा- मैं तुझसे श्रेष्ठ हूँ क्योंकि जो तू जानता या सोचता है, उसे मैं ही प्रकाशित करती हूँ, मैं ही उसे फैलाती हूँ।

ये दोनों प्रजापति के पास निर्णय के लिये गये। दोनों का पक्ष सुनकर प्रजापति ने निर्णय दिया कि "मन ही तुझसे (वाणी से) श्रेष्ठ है क्योंकि तू मन का ही अनुकरण करती है और उसी का अनुवर्तन भी करती है। यह नैसर्गिक सिद्धान्त है कि बड़ों का अनुकरण एवं अनुसरण छोटा करता है।

प्रजापति के इस निर्णय को सुनकर वाणी अत्यन्त खिन्न हो गई और यह कहते हुये रूठ कर चली गई कि हे प्रजापति, मैं कभी आपके लिये हवि का वहन नहीं करूंगी क्योंकि आपने मेरा विरोध किया। तब से यज्ञ में जो कुछ हवि प्रजापति के निमित्त दी जाती है, वह मौन होकर ही दी जाती है क्योंकि वाणी प्रजापति के लिये हवि की वाहक नहीं होती।

इस लघु आख्यायिका में निम्न बातों की ओर संकेत प्राप्त होता है-

(अ) मानव के पास "मन" रूपी श्रेष्ठ वस्तु है, जिसे परिष्कृत रखना एवं उदात्त गुणों से युक्त रखना अत्यावश्यक है। अतएव भारतीय संस्कृति का पूरा जोर मन की पवित्रता पर है तथा गीता में कहा भी गया कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"।

(ब) मानव यदि लोक लुभावन के लिये मन के भीतर कुछ भाव रखता है और दिखावे के लिये वाणी से कुछ बोलता है (मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्) तो वह न तो दीर्घकाल में उसके लिये हितकर होता है और न ही वह अपनी प्रामाणिकता को बचा पाता है। अतः मन और वाणी की एकात्मकता का व्यवहार ही 'सत्य' का आधार बनता है और वही उसकी श्रेष्ठता को चिरकाल तक स्थापित करता है।

कथा - 6 मनु-मत्स्य कथा

(सृष्टि के सातवें पर्याय में) महाराज वैवस्वत मनु के लिये प्रातःकाल उनके सेवक ने हाथ-पैर धोने के लिये जलपात्र में जल रखा। मनु ने जब उस जल को मुखप्रक्षालन हेतु हाथ में लिया तो उनके हाथ में एक मछली का शिशु आ गया।

ISSN : 3048-6173

वह छोटी सी मछली बोली हे मनु, आप मुझे पाल लीजिये। मैं संकटकाल में आपकी रक्षा करूंगी। मनु ने पूछा- तुम मेरी किस विधि रक्षा करोगी? उसने उत्तर दिया- कुछ काल बाद भयंकर तूफान युक्त जल-प्रलय (बाढ़) में ये सारी प्रजायें नष्ट एवं विलीन होने वाली है; मैं उस भयंकर आपदा में आपकी रक्षा करूंगी। महाराज मनु ने पूछा "मैं तुझे किस विधि से पालूँ?

वह बोली "जब तक हम छोटे रहते हैं, हमारी बड़ी आफत रहती है क्योंकि छोटी मछली को बड़ी मछली निगल या खा जाती है। अतः आप सर्वप्रथम मुझे घर में घड़े में पालना। जब मैं उससे बढ़ जाऊँ तो एक बड़ा गड्डा खोदवाकर मुझे उसके पानी में रखना। जब मैं उससे भी बढ़ जाऊँ तब मुझे समुद्र में ले जाकर छोड़ देना। तब मैं बड़ी एवं समर्थ हो जाऊंगी और मेरे लिये कोई विपत्ति न रहेगी।

महाराज मनु ने वैसा ही किया। वह छोटी मछली बहुत जल्द ही झष (बड़ी) मछली हो गई, क्योंकि अष (महामस्य प्रजाति की मछली अन्य मछलियों से अधिक एवं तेजी से बढ़ती हैं)। (समुद्र में डालने के पूर्व) उस बड़ी हुई मछली ने कहा- हे राजन्, 'अमुक वर्ष में भयंकर तूफान एवं जल-प्रलय आयेगा' तब आप मेरे कहने के अनुसार एक बहुत बड़ी नौका (पोत) बनाकर प्रतीक्षा करना और जब तूफान उठे तो उस बड़ी नाव (या पोत) पर बैठ जाइयेगा। मैं उपस्थित होकर आपको अन्यत्र ले जाकर उस भयंकर विपदा से बचाऊंगी।

महाराज मनु ने मछली के कथनानुसार उसे पाला तथा महामत्स्य हो जाने पर उसे समुद्र में ले जाकर छोड़ दिया और जिस वर्ष के लिये उसने कहा था, उसी वर्ष उसके बतलाये अनुसार पोत (बहुत बड़ी नाव) तैयार कराया तथा प्रतीक्षा करने लगे। निर्धारित समय आने पर भयंकर तूफान उठा तो वे पोत पर सवार हो गये। तभी वह महामत्स्य उन तक तैर कर आई। उसके संकेत पर महामत्स्य के सींग पर पोत की रस्सी को बांध दिया। इस बंधे पोत को उस महामत्स्य ने उत्तरी पहाड़ पर जल्दी से पहुंचा दिया।

उस (महान् मत्स्य) ने कहा 'मैंने आपको बचा लिया, अब वृक्ष में पोत को बांध लीजिये" जब जल ज्यों-ज्यों कम होने लगे त्यों-त्यों नीचे उतर आना महाराज मनु ने पैसा ही किया अतएव उत्तरी पहाड़ के उस भाग को 'मनोरवसर्पणम्' अर्थात 'मनु का उतार' कहते है। उस प्रलयंकारी बाढ़ एवं तूफान ने सब प्रजाओं को नष्ट कर दिया केवल अकेले महाराज मनु बचे रह गये।

महाराज मनु ने प्रजा की कामना से जल में यज्ञाहुतियाँ दी एवं तपस्या लीन रहे। उस विकट समय में भी मनु ने पाकयज्ञ अनुष्ठित किये। एक वर्ष बीत जाने पर एक सुन्दर स्त्री उत्पन्न हुई जो कोमलांगी, कान्तिमयी एवं अनुग्रह की वर्षा करती हुई प्रतीत हो रही थी। वह मनु के पास पहुँची।

ISSN : 3048-6173

महाराज मनु ने पूछा कि आप कौन है? उसने कहा "आपकी पुत्री"। इस पर मनु आश्चर्यचकित हुए और कहा कि 'आप मेरी पुत्री कैसे? उसने उत्तर दिया आपने जलों में जो मंत्रपूर्वक आहुतियाँ दी उसी से मैं उत्पन्न हुई हूँ। आप श्रद्धापूर्व यज्ञ करते रहे, आपकी प्रजा-कामना पूरी होगी। मनु ने "तथास्तु" कहा और यज्ञ करते रहे। कालान्तर में जल घटता गया तथा पृथ्वी पर वृक्ष-सरीसृप-पशु-पक्षी एवं मानव उत्पन्न होते चले गये। इस प्रकार सृष्टि पुनः हरी-भरी, नानाप्रकार के कलरव एवं शिशुओं के किलकारियों से आमोद युक्त हो गई।

प्रस्तुत कथा में सृष्टि का बीज स्त्री-वर्ग को बतलाया गया तथा स्त्री-जाति के संरक्षण, उसके प्रति आदरभाव एवं श्रद्धा रखने का सन्देश दिया गया। इसके अतिरिक्त यह भी उपदिष्ट किया गया कि 'यज्ञ' सृष्टि का मूल है अतः मानव को इसका सातत्य बनाये रखना चाहिये। कथा-7 प्रजापति का सर्वहितकारी आदेश (द-द-द-)"

सृष्टि की उत्पत्ति के अनन्तर पुराकाल में प्रजापति की तीनों सन्ताने देवगण, असुरवृन्द एवं मानव क्रमशः सृष्टिकर्ता के पास इस भावना से उपस्थित हुये कि उन्हें जीवन-दर्शन हेतु सार्थक उपदेश प्राप्त हो।

सर्वप्रथम देवगणों ने प्रजापति से प्रार्थना की कि उन्हें जीवन हेतु उपदेश प्रदान करें। प्रजापति ने संक्षिप्त सूत्ररूप में उन्हें 'द' का उपदेश किया और इस पर विचार-मंथन कर जीवनयापन करने को कहा।

देवगण प्रजापति द्वारा उपदिष्ट 'द' का रहस्य बतलाने के लिये गुरु बृहस्पति से निवेदन किया। बृहस्पति ने कहा स्रष्टा ने आप लोगों को अनन्त वैभवसम्पन्न एवं सामध्येवान् बनाया है। अतः आपके लिये एक ही अनुशासन है इन्द्रिय-जय करो 'दमध्यम्' अर्थात आत्म-शासन करो।

देवगणों के बाद असुरवृन्द प्रजापति के पास पहुंचे और प्रार्थना की कि उन्हें सार्थक जीवन हेतु उपदेश प्रदान करें। प्रजापति ने सूत्ररूप में उन्हें पुनः 'द' का उपदेश किया और इस पर विचार-मंथन कर जीवन में उतारने को कहा।

असुरवृन्द प्रजापति द्वारा उपदिष्ट 'द' का रहस्य समझाने के लिये शुक्राचार्य से निवेदन किया। शुक्राचार्य ने कहा- स्रष्टा ने आपको अतुलनीय बल एवं सामध्ये प्रदान किया है, अतः आपके लिये एक ही अनुशासन है "दयध्वम्" अर्थात् दया की उपासना करो।

सर्वान्त में 'मानव' स्रष्टा प्रजापति के पास पहुंचे और प्रार्थना की कि उन्हें जीवन-सूत्र का उपदेश करें। प्रजापति ने सूत्रात्मक भाषा में उन्हें पुनः 'द' का उपदेश कर दिया और इस पर विचार-मंथन कर जीवन में डालने को कहा।

मानव, प्रजापति द्वारा उपदिष्ट 'द' का मर्म समझने हेतु ऋषियों के पास पहुंचे और इसका रहस्योद्घाटन करने हेतु निवेदन किया। ऋषियों ने कहा कि आपलोग पृथ्वी पर सर्वोत्तम प्राणी हो तथा पृथ्वी के समस्त भौतिक साधनों के

ISSN : 3048-6173

स्वामी हो। अतः प्रजापति ने आपको सूत्ररूप में यह अनुशासन दिया है कि आप 'दत्त' अर्थात् दान दो, प्रेमपूर्वक बाँट कर भोग करो।

प्रजापति विश्व के स्रष्टा है तथा विश्वव्यापी शक्ति हैं। उनकी वाक् अर्थात् वाणी भी विश्वहितकारी है। उस वाक् के संकेत दम (इन्द्रिय-जय), दया (समस्त जीवों पर दया) और दान (प्राणिमात्र को बांटना) भी सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक हैं। इस लघु कथा का उपदेश यह है कि यदि प्रजायें इन सूत्रात्मक संकेतों को अपने जीवन में उतार ले तो सर्वत्र शान्ति, सौहार्द एवं समृद्धि का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। आज भी उस दैवी वाक् का संकेत मेघ की गर्जना द्वारा हमें प्राप्त होता रहता है। आवश्यकता है उस संकेतात्मक भाव को अपने जीवन में उतार लेने की।

कथा-८ मोक्षोपायकी श्रेष्ठता (जानश्रुति-रैक्व संवाद)

महाराज जानश्रुति पुराकाल के एक महनीय महीपाल थे। उनके जीवन का एक ही महान् व्रत था- प्रजाओं का कष्ट निवारण एवं अतिथि सेवा। वे बहुत ही श्रद्धा के साथ यज्ञों में बड़ी-बड़ी दक्षिणा देने, विशाल साम्राज्य में सर्वत्र धर्मशालायें बनाने, अन्नदान देने, मार्गों पर वृक्षों की हरीतिमा लगाने, उपवनों के निर्माण एवं सुन्दर जलाशयों की स्थापना के लिये कीर्त्तिशाली थे। राजा परोपकारों के कार्यों से सन्तुष्ट थे तथा सांसारिक किसी भी वस्तु की चाह बाकी न थी।

देवताओं और ऋषिगणों ने विचार किया कि ब्रह्मानन्द का सुख सर्वोत्तम तथा अन्तिम सत्य है, अतः जानश्रुति को इस तथ्य की शिक्षा होनी चाहिये। वे हंस का रूप धारण कर राजा के महल के ऊपर से सुखद रात्रिवेला में उड़ते हुवे विचरण करने लगे। पिछले हंस ने आगे उड़नेवाले हंस से कहा भाई भल्लाक्ष, राजा जानश्रुति का यश और तेज सर्वत्र व्याप्त है, कहीं उसे स्पर्श न कर लेना अन्यथा तत्काल भस्मीभूत हो जाओगे। हम लोग उसी के महल के ऊपर से उड़े चले जा रहे हैं।

आगे उड़ने वाले हंस (भल्लाक्ष) ने तिरस्कार की हंसी हंसते हुये कहा भाई श्वेताक्ष, तुमने आज बड़ी विचित्र बात सुनाई। मुझे प्रतीत होता है कि उस गाड़ीवाले 'महर्षि रैक्व' की कीर्ति अभी तुम्हारे कानों तक नहीं पहुंची है, अन्यथा तुम्हें महाराज जानश्रुति की प्रशंसा करने में अवश्य संकोच होता।

श्वेताक्ष ने विस्मय से पूछा भाई यह गाड़ीवाले रैक्व कौन है? उनका आचरण कैसा है? भल्लाक्ष ने कहा वे महान् ब्रह्मज्ञानी हैं। महर्षि रैक्व जिस जानने योग्य ज्ञान-वस्तु को जानते हैं वह अद्भुत है। जो उस ज्ञान को जान लेता है, वह भी महर्षि रैक्व के समान पूजनीय, समस्त शुभ-कर्मों के फल को प्राप्त करने वाला चरम पुरुषार्थ 'मोक्ष' का अधिकारी हो जाता है।

ISSN : 3048-6173

राजा जानश्रुति महल की ऊँची अटारी पर अभी जगे ही हुये थे। भल्लाक्ष की बातें सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका मानना था कि उनकी कीर्ति से बढ़कर किसी प्राणी की कीर्ति हो ही नहीं सकती। राजा जानश्रुति विचारने लगे "यह महर्षि रैक्व कौन हैं? कहीं इनका निवास है? उन्होंने प्रातःकाल होते ही अपने सेवकों को आदेश दिया कि आपलोग दत्तचित्त होकर महर्षि रैक्व की खोज कीजिये।

खोज प्रारंभ हुई किन्तु प्रथम प्रयास असफल रहा। राजा ने अब अपने सेवकों को समझाकर पुनः भेजा कि आप रमणीय तपोवनों में महर्षि की खोज कीजिये, जहां सन्तजन शान्त मन से ध्यान में निमग्न रहते हैं। सेवकों ने इस बार पुनः यत्न किया और दूर-दूर तक खोजने के अनन्तर उन्होंने नदी के किनारे बैलगाड़ी के नीचे अनासक्त भाव से बैठे हुए एक तापस को देखा। उनके मुख की आभा यह बतला रही थी कि वे पहुंचे हुए सन्त हैं। राजसेवकों ने उनसे पूछा भगवन् क्या गाड़ीवाले महर्षि रैक्व आप ही है? ऋषि ने कहा हाँ, मैं ही हूँ।

सेवकों द्वारा यह शुभ-समाचार महाराज जानश्रुति को दिया गया और जानश्रुति बड़ी संख्या में गांये, सोने का हार, रथ आदि लेकर महर्षि रैक्व के पास गये और उन्होंने प्रार्थना की - "भगवन्, आप उस देवता का उपदेश दीजिये जिसकी उपासना आप करते हैं"।

ऋषि के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा अरे मूर्ख, ये गांये, ये स्वर्णहार, ये रथ आप ही के पास रखें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं। अनश्वर-तत्त्व के लाभ के लिये नश्वर पदार्थों के अर्पण का क्या औचित्य? 'ब्रह्मविद्या' की उपलब्धि श्रद्धा, विश्वास तथा नम्रता से होती है। आपको राजा होने का गर्व है, कृपया वापस जायें।

महाराजा जानश्रुति के लिये यह वज्रपात जैसा था। वे उलटे पांव महल लौट आये तथा आत्मचिन्तन करने लगे। वे पुनः ऋषि रैक्व के पास गये और उपहार समर्पित करते हुये कहा कि मैं विनम्रभाव से आपके श्रीचरणों में एक शिष्य के रूप में उपस्थित हुआ हूँ। मुझे ज्ञानोपदेश करें।

महर्षि रैक्व 'संवर्ग-विद्या' के उपासक थे। उन्होंने इस विद्या के मूल-तत्त्वों का उपदेश राजा जानश्रुति को देना प्रारंभ किया और कहा 'संवर्ग' शब्द का अर्थ है 'संवर्जन' संग्रहण अथवा 'संग्रसनं', वह वस्तु जो अन्य पदार्थों को अपने में मिला लेती है। यह 'संवर्ग' वायु ही है। जब अग्नि बुझती है, तब वह वायु में ही लीन हो जाता है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा अस्त होते हैं, तो वे वायु में ही लीन हो जाते हैं। इस विश्व का मूलतत्त्व 'वायु' ही है। विश्व में जितनी गति होती है वह वायु का ही कार्य है। इसी प्रकार जब जल सूख जाता है, तब वह वायु में ही लीन हो जाता है। जो बात ब्रह्माण्ड में घटित होती है, इस शरीरपिण्ड में भी वही बात है। 'प्राण' ही संवर्ग है। जब मनुष्य सोता है, तब उसकी वाक्, इन्द्रियाँ, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि प्राण में ही लीन हो जाते हैं। समस्त इन्द्रियों में प्राण ही श्रेष्ठ है। इतर इन्द्रियों की शक्ति चले जाने पर भी पुरुष

ISSN : 3048-6173

जीवित कहलाता है तथा कार्य निर्वाह करता है, परन्तु प्राण (वायु) के निकलते ही उसके शारीरिक समस्त व्यापार रुक जाते हैं, वह निश्चेष्ट हो जाता है। इस प्रकार समस्त ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों में 'प्राण' ही मुख्य है। दो ही संवर्ग हैं। देवताओं में 'वायु' और इन्द्रियों में 'प्राण'। ये दोनों संवर्ग 'ब्रह्म' के ही रूप हैं। इन दोनों की उपासना ब्रह्म की ही उपासना है। अन्नदान आदि से उत्पन्न होने वाला फल क्षणभंगुर होता है, परन्तु 'ब्रह्म' की उपासना का फल अनश्वर होता है। उससे सद्यः मोक्ष की प्राप्ति होती है। हे राजन्, प्राणायाम आदि योगक्रियाओं से 'वायु' 'प्राण' की उपासना करनी चाहिये।

राजा जानश्रुति की अभिलाषा पूर्ण हुई। अनिकेतन एवं निःस्पृह मुनि के ज्ञान से महल में रहनेवाले सम्राट् के नेत्रों का उन्मीलन हुआ और वे 'प्राण' की साधना के मार्ग में प्रवृत्त हो गये तथा ब्रह्मानन्द में विलीन हो गये।

इस आलेख में वैदिक वाङ्मय की कतिपय लघु कथा-कहानियों के उल्लेख करने का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से पाठकों के चित्त पर जो प्रभाव कथा-कहानियों का जाता है वह प्रभाव बड़े-बड़े ग्रन्थों के द्वारा भी सम्पन्न नहीं किया जा सकता है। वर्तमान संपर्वयुग में मानव के पास समयाभाव है तथा वैर्य का भी अभाव है। अतएव वेदों में लघु कथा-कहानियों के माध्यम से मानवीय संवेदनायें, कर्तव्य एवं अकर्तव्यों का उपदेश, नीति के विचार एवं गहन दार्शनिक चिन्तन का उन्मेष कराया गया है जो विश्व-साहित्य को वेदों की अपूर्व देन है।

आधार - सन्दर्भ

1 हितोपदेश, श्लोक सं.8
2 महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 59
3 ऋग्वेद 1/79/1-2
4 ऋग्वेद 8.80.1-7
5 ऋग्वेद 3.33.4,6,8,10
6 शतपथब्राह्मण 1.2.5
7 शतपथब्राह्मण 1.4.5
8 शतपथब्राह्मण 1.8.1
9 शतपथब्राह्मण 14.5.2.2
10 छा.उप.4 अ., 1-3

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

अभिनव परम्परा का अभिराम काव्योपक्रम

प्रो. डा. वत्सला आचार्य
(संस्कृत), सेवानिवृत्त
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय झालावाड़

'नतिततति' एक विश्लेषण

के निवासी पं. महामहिम प्रदत्त राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित, माघ, वाचस्पति प्रभृति अनेक पुरस्कारों से विभूषित, अनेक उपाधियों से सुशोभित, पद्मिनी, पत्रदूतम् तथा रसकपूरम् जैसे ग्रन्थों के प्रणेता अपरा काशी (जयपुर) मोहनलाल शर्मा पाण्डेय, मम्मटोक्त शक्ति, निपुणता, अभ्यास, काव्योद्भवत्रयोगुणोपेत, राजशेखर प्रोक्त शक्ति तथा शक्ति से उत्पन्न प्रतिभा प्रकर्ष से अनुप्राणित, कारयित्री व भावयित्री प्रतिभा द्वय में से कारयित्री प्रतिभा से युक्त, सारस्वत कवि - ये कविगत वैशिष्ट्य उनके काव्य 'नतिततति में उनके अभिनव प्रौढ़ पाण्डित्य प्रकर्ष का प्रमाण है।

नतिततति काव्य मुक्तक काव्य भी है. स्तोत्र काव्य भी है तथा चित्रकाव्य भी है। इस ग्रन्ध में देवी-देवताओं को समर्पित स्तोत्र मुक्तक है, जो एकाक्षर चित्रकाव्य की पद्यबन्ध जटिलता से संश्लिष्ट है। इस काव्य में मुक्तक, स्तोत्र तथा चित्रकाव्य का अद्भुत मणि-कांचन संयोग है। इसके मुक्तकों में कालिन्दी, स्तोत्रों में भागीरथी तथा चित्रों में सरस्वती त्रिस्रोता के सौन्दर्य का संगम विद्यमान है।

स्तोत्र साहित्य में एक सुन्दर कड़ी जोड़ने वाले इस नतिपरक मुक्तक चित्रकाव्य संग्रह की यह विशेषता है कि इसका प्रत्येक पद्य नागरी वर्णमाला के एक वर्ण को नायक बनाकर लिखा गया है और उस पद का प्रत्येक पद उस वर्ण से ही प्रारम्भ होता है। पद्यों की रचना में वर्णमाला के किसी भी अक्षर का परित्याग नहीं किया है। यह भी एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है क्योंकि ट. व. ड. द. थ प्रभूति ऐसे वर्ण हैं जिससे सम्बन्धित सार्थक शब्दों की संस्कृत भाषा में अत्यन्त न्यूनता है। परन्तु कवि ने सभी वर्णों पर पद्य निर्मित किए हैं। इस ग्रन्थ में अलग-अलग वर्ण से शुरू होने वाले ३३ स्तुति पद्य वर्णाक्रमानुसार सृजित कर संकलित किए गए हैं। का. त्र. ज्ञ वर्णों को संस्कृत के हिसाब से कवर्ग, तवर्ग आदि में न लगाकर सुखावबोधार्थ हिन्दी वर्णक्रमानुसार अन्त में लगाया गया है।

ISSN : 3048-6173

नति शब्द का अर्थ प्रणमन है। श्री आप्टे ने अपने शब्दकोश में नति (स्त्री) नम्+क्तिन् झुकाव, झुकना, प्रणमन, वक्रता, कुटिलता, अभिवादन करने के लिए शरीर को झुकाना, प्रणति, शालीनता तथा ज्योतिष में भोगांश में स्थानभ्रंश। तति (सर्व, दि. तन्+क्तिन) श्रेणी, पंक्ति, रेखा, गण, बल, समूह। भतितति का शाब्दिक अर्थ हुआ प्रणमन-श्रृंखला। कवि ने स्तुतिपरक मुक्तक चित्रकाव्य में वैदिक देवताओं से लेकर दशावतार तक ही नहीं अपितु मानवीय संचेतनाओं तक का प्रणमन किया है। कवि ने समस्त शक्तिपुंज जिसमें सामान्य से हटकर असामान्य अर्थात विशिष्ट गुण की सत्ता हो. वह चाहे देवता हो या देवी अथवा आर्ष सभी को अपनी प्रार्थना के माध्यम से गुण स्तयन करते हुए श्रद्धा समर्पित की है। एक ही देवता के विविध रूपों तथा सामर्थ्य को चित्रित करने के लिए एकाधिक श्लोक भी रचित किए गए हैं। प्रत्येक पद्य अपने आप में पूर्ण है। विभिन्न देवताओं की स्तुति के साथ इन सभी में विपुलार्थ समाविष्ट है।

कवि ने श्री कृष्ण, वामन, वराह, बृहस्पति, परभब्रह्म श्रीकृष्ण विष्णु जमदग्नि भारद्वाज ऋषि, रुक्मिणी, रुद्र, महाशिव अग्निदेव, दुर्गा, ब्रह्मा नृसिंह, शेषनाग वाग्देवता, महेश्वर, श्रीराम, लक्ष्मी, ब्राह्मी, गणपति, लक्ष्मीपति विष्णु कार्तिकेय, सूर्य, हनुमान विष्णु गंगा, षोडशमातृका आदि देवी-देवताओं की महत्ता व प्रभुता को प्रतिपादित करते हुए उनको नमन किया है। कवि ने नये देवता जो इस जगत् में पूज्य तो है किन्तु इस नाम से प्रथित नहीं है, उन देवताओं के सन्दर्भ में भी भावाभिव्यक्ति की है जैसे टंकेश्वरी, दुण्डिराज आदि। कवि विष्णु भक्त है, इसी कारण विष्णु के विविध अवतारों, निमित्त एवं क्रिया-कलापों का गुणगान करते हुए अपनी भक्ति को प्रदर्शित किया है।

इन वर्ण क्रमानुसार सृजित स्तुतिपरक मुक्तक चित्रकाव्य में शब्दार्थ उभयनिष्ठ अद्वितीय सौन्दर्य विद्यमान है, जो चमत्कार से युक्त है। ऐसे काव्यों की रचना वे ही विद्वान कर सकते हैं जिनका शब्दशास्त्र, कोष एवं संस्कृत वाङ्मय पर असाधारण अधिकार हों। ऐसे एकाक्षरी पद्यों के भाव एवं उनमें निहित कथाओं एवं शब्दजन्य चमत्कार का अनुभव 'आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः' उक्ति के अनुसार शब्दशास्त्र में ही जिन्होंने अपना जीवन जिया है ऐसे विद्वान ही कर सकते हैं। कवि द्वारा वर्णमाला क्रमानुसार संयोजित छन्दों की अप्रतिम, अद्भुत चमत्कृति तथा शब्दार्थ एवं भावों के गुम्फन एवं दुरूह पदों के ललित विन्यास का सौन्दर्य सहृदयों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत है -

ग्रन्थ का आद्य मंगलाचरण श्लोक वर्णमाला के आद्याक्षर 'क' वर्ण से सृजित है। इस श्लोक में कवि ने श्री कृष्ण से आशीर्वात्मक स्तुति कर रक्षा की कामना की है। सम्पूर्ण विश्व के मंगलमय जीवन की अभिलाषा व्यक्त की है। इससे कवि का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है कि नतितति का सर्जन स्वान्तः सुखाय नहीं अपितु विश्वजनीन मानव कल्याण के निमित्त हैं। छन्द के प्रत्येक चरण के भीतर गुम्फित पदों में अन्तर्कथा निगूढ़ है। कवि कृत उद्धरण संदर्शनीय हैः-

कालिन्दीकूलकेलिः कुरुकुलकदनः कानने काम्यकुब्जे केकाभिः कीर्त्यमानः कलितकरुणया कुञ्जरं कान्तकायम्। कुर्वन् क्रीडन् कदम्बे कनककटककृत्किङ्किणीक्वाणकान्तः कृष्णः कल्याणकारीकलयतु कुशलं

ISSN : 3048-6173

केशवः कंसकालः ।।'

कवर्ग के दूसरे वर्ण 'ख' से श्लोक की रचना कर वामन रूप विष्णु से समस्त लोकों की अभिरक्षा की कामना की है। 'ग' व्यंजन से ज्ञाननिधि गुरु के गौरव का गुणगान किया है। 'घ वर्ण से विष्णु द्वारा वराह रूप धारण कर रसातल से धरित्री को ऊपर उठाने और समस्त जीवों की रक्षा करने का वर्णन किया है। वराहवतार का सम्पूर्ण कथांश इसमें वर्णित है।

वर्णमाला के द्वितीयाक्षर 'च' वर्ण से चक्रधारी श्री कृष्ण के स्वरूप का चित्रण करते हुए कवि ने यह कामना की है कि यह सुदर्शन चक्र अविरल चलता रहे जिससे दुर्मद दुष्टों का दलन होता रहे। इस श्लोक के प्रत्येक पद में अन्तर्कथा निगूढ़ है। 'छ' व्यंजन से भगवान श्री कृष्ण के छलिया स्वरूप की छवि को चित्रित करते हुए कवि कामना करता है कि प्रभु वंचकों के पापों से पुण्यात्माओं की रक्षा करते रहें। 'ज' वर्ण से ब्रह्मर्षि जमदग्नि के गौरव, तप एवं पराक्रम को व्याख्यायित किया है। उनके मनस्वी स्वरूप को चित्रित किया है। जमदग्नि की कथा पदों में निःस्यूत है। 'झ वर्ण से कवि ने गंगा नदी के स्वरूप तथा महिमा का गुणगान कर आम आदमी तक पहुँचाने का यत्न किया है। ज्ञानियों में गंगा सी पावनता, सहिष्णुता तथा अज्ञानरूपा पापों को प्रक्षालन करने की क्षमता सदा रहे। कवि ने भारतीय संस्कृति के मूल्यों का संरक्षण करने वाले ज्ञानियों के संकल्प रक्षा की कामना की है जिससे आदर्श सुरक्षित रहे तथा पुण्य प्रवाहित होकर विश्व को दिशा बोध मिल सके।

वर्णमाला के तृतीय आद्याक्षर से आरम्भ कर नये देवता जो इस जगत् में पूज्य तो है किन्तु इस नाम से प्रथित नहीं है ऐसे कोष की अधिष्ठात्री टंकेश्वरी लक्ष्मी देवी के प्रति भावाभिव्यक्ति की है। कवि ने प्रार्थना की है कि वह देवी अस्थिर धनिकों को स्थिर करें। कवि का प्रयोग दर्शनीय है:-

टङ्केश्वरी टङ्ककटङ्कटका टङ्कारिटङ्काटलटीक्यमाना ।
टाकारकृत् टुण्टुकटुण्टुकाशा टनाटनं टङ्कयताट्टलेशान् ।।

'ठ' अक्षर से आरम्भ होने वाले शब्द बहुत अल्प मिलते हैं अत कवि ने उसी के अनुरूप छन्द का चयन किया है। कवि ने उपलब्ध शब्दों को लेकर जिस भाव भूमिका को प्रस्तुत किया है वह प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है। कवि कृत प्रयोग उद्धरणीय है -

ठालिन्यै ठक्कुरष्ठङ्गः ठकुरैष्ठठकायते । ठकारैष्ठालिनी ठण्ठैः ठकुरान् ठगयत्यसौ।।

इस श्लोक में रूक्मिणी के अपहरण के समय का चित्रण है। रूक्मिणी शिशुपाल आदि वीरों को युद्ध से विमुख कर देती है। रूविमणी विवाह की अन्तर्कथा पदों में निगूढ़ है। इसी प्रकार 'ढ व्यंजन पर भी शब्द अधिक नहीं मिलते हैं

ISSN : 3048-6173

लेकिन कवि ने अपनी अन्वेषीप्रवृत्ति से शब्दकोशों से 'ढ' शब्द का अन्वेषण कर मनोरम स्तुति गणेश जी की है। कवि का पद्यबन्ध उद्धृत है -

ढौकिता ढौकते दुण्डिं ढक्काढोलकढौकनैः। ढक्कानिढौंकितो ढौकं ढौकको ढालिदुण्ढिना।।

उत्तर-प्रदेश के वाराणसी नगर में विनायक का देवस्थान दुण्डि' के नाम से विख्यात है। विभिन्न वाद्य यन्त्रों की मधुर ध्वनि के साथ श्रद्धालु दुण्ढिराज' को प्रणाम करते हैं। गणपति के महत्त्व को कवि ने गन्धायित किया है। 'ड' वर्ण से अष्टभैरव की स्तुति की है तथा प्रार्थना की है कि वह अपनी महाध्वनि से शिशुओं की प्रकृति में व्याप्त भय का विनाश करें।

वर्णमाला के चतुर्थ आद्याक्षर 'त' से ताराप्रिय महाशिव से सांसारिकों के कष्ट निवारण के लिए प्रार्थना की है। कविवर्य ने शिव की स्तुति करते हुए संसार के दुःखों से रक्षा करने के लिए विनती की है। 'थ वर्ण से पाँच या छः शब्द ही मिलते हैं। कवि ने अनुष्टुप् छन्द में अथर्ववेद के महत्त्व को बताते हुए अग्नि देवता से दुष्टों के विनाश के लिए स्तुति की है -

धूर्वन्त्र्त्यमधर्वाणोऽर्थार्थ थुडितथूर्वणैः। धूर्वन्तं थुडितं धूरं धूर्वामस्थूर्व धूर्वितः ।।

प्रस्तुत श्लोक में कवि का उद्देश्य अथर्ववेद में प्रतिपादित अभिचार प्रयोगों के दुरूपयोग को समाप्त करना है। 'दकार व्यंजन से शक्ति के रौद्र रूप दुर्गा की आराधना कर दुष्प्रवृत्तियों का सदैव विनाश करने की प्रार्थना की है। पकार वर्ण से जगन्नियामक सुष्टि के मूल स्वरूप, उद्भव के कारण ब्रह्मा के गौरव का वर्णन कर अपनी स्तुति से ब्रह्मा को प्रसन्न करने की कामना की है। 'म अनुनासिक वर्ण से नृसिंह अवतार स्वरूप परब्रह्म की गरिमा का गुणगान करते हुए कवि ने नृसिंह भगवान् को नमन किया है। प्रकृत श्लोक में नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकश्यप के वध की अन्तर्कथा सम्पृक्त है।

वर्णमाला के पंचमाक्षर पकार से कवि ने हिमालय पुत्री पार्वती का पावन चरित्र प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता के लिए वन्दना की है। इस श्लोक में पार्वती के तपस्या की अन्तर्कथा निबद्ध है। फकार व्यंजन से भी कोश में न्यून शब्द मिलते हैं। कवि ने शेषनाग की फणविस्तृति का फक्रिका के साथ उपमित कर वर्णन किया है। इस छन्द से कवि के वैयाकरण एवं आयुर्वेद का ज्ञान स्पष्ट होता है:-

फलत्रिकस्य फाण्टेन फलन्ति फणिफक्षिकाः। फणीशस्य फणाटोफ फूत्कारै फचिकायते।।

यहाँ फक्रिकायते शब्द के प्रयोग से उपमा है। फणीशः सर्पराज शेषनाग, शेषावतार पतंजलि। ब वर्ण से कवि ने सारस्वत सिद्धि की साधिका माँ शारदा स्वरूपा सरस्वती के प्रसाद के सतत् प्रवाह की कामना है जिससे वाङ्मय की

ISSN : 3048-6173

वृद्धि हो सके। ज्ञान विज्ञान के सतत प्रवाह से विश्व का मंगल हो सकता है। यदि किसी राष्ट्र में ज्ञान का प्रचार-प्रसार नहीं है तो वह राष्ट्र सुसंस्कृत और समृद्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि बौद्धिक चेतना के अभाव में विकास की स्थिति नहीं बन सकती। कवि ने विश्वजनीन कल्याण एवं सुसंस्कृति के लिए अभ्यर्थना की है। कवि सृजित उद्धरण दष्ट्रव्य है-

ब्रह्मण्या ब्राह्म्यबोधा बहुतमबलिका ब्रह्मता ब्राह्मणानां ब्रह्मिष्ठा ब्राह्मणीनां बहुलबलवती बोधिका ब्रह्मबुद्धा। ब्रहाज्ञा बोधबोध्या बत बकुलवला बाहुला बाधितानां ब्राह्मी ब्रह्माण्डबीजा बलतु बुधवरान् बन्धनाद ब्रडावाला।।

'भ' वर्ण से कवि ने सप्तर्षि मण्डल के प्रमुख तेजस्वी ऋषि भरद्वाज के महनीय तपः साधना तथा गौरव के लिए नमन करते हुए उनकी तेजस्विता, संकल्पशील तथा ज्ञान-गौरव के लिए स्मरण किया है। कवि का छन्द समवलोकनीय है:-

भरण्यौ भावाटं भरथभरणं भातभविकं भरण्यं भक्तानां भजनभवनं भारतभवम्। भविष्णुं भ्रान्तिघ्नं भसितभरमालं भवनिदं भरद्वाजं भव्यं भजत भगवन्तं भयभयम्।।

ऐसे महर्षि ही समाज को सही दिशा देने में समर्थ होते हैं। इनके आदर्श वचन के अनुसार ही लोक प्रशासन की छवि सुधरती है। मकार व्यंजन से महेश की महनीय महिमा को मण्डित किया है। मुक्तिदायक महेश्वर हम सभी को सुख प्रदान करें ऐसी अभ्यर्थना है। इस श्लोक में समुद्रमन्थन की कथा निगूढ़ है।

कवि ने उपर्युक्त श्लोकों में देवी-देवताओं की स्तुति कर उनसे मानव प्राणी, जगत् के कल्याण की प्रार्थना की है किन्तु 'यकार अन्तस्थ वर्ण से निर्मित छन्द में कवि ने नारी जगत् की यौतुक के कारण जो दुर्दशा है उसका यथार्थ चित्रण किया है-

याचे यज्ञेन यज्ञं युवयुवतियुतौतवं चौवतस्य योषा यक्षस्य योनिर्यजनयतयतिर्याजिका यातनायाः। युक्तिर्यमयमित युतिर्यज्यभिर्याप्ययानैः याथातथ्यस्य यान्यं यज्ञेन योग्या युगलयमनिका याप्यते यौतुकार्थम्।।"

यौतुक के कारण आज युवतियों आत्मदाह कर यमलोक को भेजी जा रही है। र अन्तःस्थ वर्ण से विष्णु के अवतार राम की महिमा का गुणगान किया है। इस छन्द में कुछ ऐसे सन्देश हैं जो आधुनिक समाज को संस्कृति के मूल्यों के महत्त्व को निर्देशित करते हैं 'रम्यो राजाधिराजो रणरणितखो राजतर्ता रामचन्द्रः राम के गुणों का संकीर्तन करते हुए आज के युग में रामराज्य के आदर्श एवं कर्तव्यनिष्ठा के अस्तित्व को प्रतिष्ठापित करने की कामना की है। शासन व्यवस्था व लोक प्रशासन में रामनीति ही सर्वोपरि एवं सुख शान्ति की कुंजी है यह प्रतिपादित किया है। 'राजताम् का प्रयोग कर कवि यह कामना करना चाहता है कि इस पृथ्वी पर सदैव आदर्श, मर्यादा एवं सांस्कृतिक मूल्यों के साथ कर्तव्य भावना रहे। 'ल' अन्तःस्थ वर्ण से सौभाग्य, समृद्धि, सम्पत्ति की प्रतीक लक्ष्मी की महिमा का

ISSN : 3048-6173

वर्णन किया है। लक्ष्मी के सौन्दर्य, गुण-दोषों का चित्रण करते हुए कवि ने प्रतिपादित किया है कि लक्ष्मी ही सामाजिक प्रतिष्ठा है। व अन्तःस्थ वर्ण से कवि ने विनायक की वन्दना करते हुए समस्त प्राणियों के अमंगल विनाश की कामना की है।

'श' ऊष्म व्यंजन से कवि ने विष्णु के विविध रूपों का चित्रण करते हुए जगत् के लिए कल्याण की कामना की है। कवि ने इस श्लोक में प्रत्येक पद श अथ श्र से आरम्भ किया है। वैसे तो कवि ने सभी देवी-देवताओं की स्तुति की है किन्तु वैष्णव होने के कारण विष्णु के विविध रूपों का चित्रण करते हुए दुष्कर्मों के नाश की याचना की है। आज समाज में भ्रष्टाचार व कदाचार व्याप्त है. कवि जगन्नियन्ता से अनुरोध कर रहा है कि आप ही दुष्प्रवृत्तियों तथा दुष्कर्मों का शमन करने में समर्थ है। कवि का उद्देश्य इस समाज को प्रेरित करना है। कवि कृत उद्धरण द्रष्टव्य है-

'श्रीशः श्रीलः शरण्यः शमयतु शमलं श्यामलाङ्ग श्रुतीराः।"

'षकार ऊष्म वर्ण से कात्यायनी रूप जगदम्बा षष्ठी देवी की, षकार से युक्त षष्ठ वेदाङ्ग, षट्कर्म, षड्वर, षड् पदार्थों, षडानन (कार्तिकेय) षोडशमातृकाओं आदि का स्मरण किया है:-

षट्कर्माणः षडङ्गानि षष्ठीं मर्ज षडाननम्। षोडशिनं षडाम्नायं चष्कन्तां षोडशाम्बिकाः ।।"

'सकार ऊष्म वर्ण से भास्वर भास्कर ग्रहराज सूर्य देवता की स्तुति करते हुए उनकी तेजस्विता का स्मरण किया है। ह ऊष्म व्यंजन से मारुतिनन्दन, बल के अधिष्ठाता तथा संकटमोचन के नाम से विख्यात हनुमान जी के शौर्य तथा साहस की महिमा का गान करते हुए समाज के कल्याण की कामना की है। कवि का छन्द अवलोकनीय है :-

'हंसो हंसस्य हर्ता हरिछतहनुको हन्तुं हत्तुं हनूमान्।।

शत्रुओं की दुर्नीति के दमन के लिए शक्तिपुंज हनुमान् से प्रार्थना का गयी है। सकार संयुक्ताक्षर से कवि ने सर्वव्यापक, क्षमाशील, क्षमेश, धरणीश्वर भगवान् विष्णु से जगत् के कल्याण के लिए मंगलकामना की है। भगवान् विष्णु सभी स्थावर और जंगम को क्षमा करते हुए सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने की कृपा करें -

बुधिताः सुभिताः क्षीणाः शमां शिप्त्वा क्षणं किती क्षण्वन्ति शमिनः शुद्रा क्षमेशः क्षमतां शरान्।।"

'त्र संयुक्ताक्षर से निर्मित पद्य त्रिसन्ध्ये का उल्लेख कर तीनों समय सन्ध्योपासन करने की प्रेरणा दी है। कवि इस पथ में भगवान शिव से प्रार्थना करता है कि ब्रह्मविद् वैदमन्त्रोच्चारक ब्राह्मण की रक्षा करें। ब्राह्मण के अस्तित्व से ज्ञान की निधि संरक्षित है। अतः ब्रह्मवेत्ताओं तथा वेदाध्यायियों की रक्षा होनी चाहिए। भगवान् शिव ब्रहा-ज्ञान वेत्ताओं की रक्षा करता है न कि जाति विशेष की। कवि वाड्मय के संरक्षण के लिए संकल्पशील है और यही इस काव्य का सन्देश

ISSN : 3048-6173

है। विपुरान्तकः पद के द्वारा त्रिपुरान्तक के विनाश से सम्बद्ध पौराणिक कथा की ओर संकेत किया गया है

त्रिसन्ध्ये त्र्यक्षरत्राणं त्रैविक्रमं त्रयीमुखम्। त्रिदशात्मा त्रिलोकेशस्त्रायतां त्रिपुरान्तकः ।।"

ज्ञ संयुक्ताक्षर से ज्ञ की सत्ता का प्रतिपादन किया है। ज्ञ की सत्ता के बिना सब शून्य है। ज्ञ से ही ज्ञान प्राप्त कर 'प्र' बना जा सकता है, केवल शास्त्रीय अध्ययन से ज्ञ में पूर्णता नहीं आ सकती है। ज्ञान का अभिष्ठाता गुरु है। गुरु के सन्दर्भ में ही 'ज्ञ की गरिमा को रूपावित किया है। ज्ञानमय परमात्मा शिष्यों को बोध देने के लिए गुरु को ज्ञान प्रदान करें।

उपर्युक्त काव्यांशों के विश्लेषण के उपरान्त हम देखते हैं कि कवि ने शब्द के आदि में एकाक्षर (एक व्यंजन) का प्रयोग कर यह तो सिद्ध कर दिया कि संस्कृत वाङ्मय में शब्दों का अपरिमित भण्डार है। इनके प्रयोग की अर्थवता के लिए कौशल एवं कुशाग्रबुद्धि के समन्वय की आवश्यकता है। ऐसी कृति कोई उपलब्ध नहीं होती है जो क से ज्ञ तक व्यंजनों में एक ही व्यंजन के शब्द का आदि में आश्रय लेकर अन्त तक रचित हुई हो। यह तो स्पष्ट है कि इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण चित्रकाव्य रचना और कष्टसाध्य पद्यगुम्फन में वे ही कवि समर्थ हो सकते हैं जिनका भाषा पर पूरा अधिकार हो, जिनकी लेखनी छन्दोबद्ध कौशल और शब्द चयन का सुदीर्घ अभ्यास रखती हो। निश्चय ही पं. मोहनलाल शर्मा जी ने अवश्य ही अनेक शब्दकोशों को सामने रखकर एक-एक शब्द चुना होगा और उसे खापित कर किसी देवता को अधिष्ठाता या अधिष्ठात्री बनाकर सार्थक स्तवन की प्रस्तुति की होगी। यह सत्य है कि शब्दशास्त्र एवं संस्कृत के परिनिष्ठित ज्ञान के अभाव में उक्त काव्य के चमत्कार का अनुभव नहीं हो सकता है 'स सूर्यस्य नैव दोषो पदन्यो नैनं पश्यन्ति अतः एकावरी काव्य सर्जन की महता को स्वीकार किया गया है। इस काव्य के प्रत्येक पद के आदि में प्रत्येक वर्ण के अनुप्रास एवं यमकादि शब्दालंकारों की छटा दर्शनीय है।

आचार्यों ने काव्य के विभिन्न भेदों में चित्रकाव्य को अधम काव्य स्वीकार किया है. परन्तु यदि गम्भीरता से विचार करें तो स्पष्ट परिलक्षित होता है कि चमत्कार ही काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। रस या ध्यनि को काव्य की आत्मा कहा जाता है. परन्तु चित्रकाव्य से भी अलौकिक आनन्द ही प्राप्त होता है यही अलौकिक आनन्द काव्य में चमत्कार है. उसकी अनुभूति उसके शब्द तथा अर्थों के चमत्कार से होती है। यमक, अनुप्रासादि शब्दालंकारों से उसी चमत्कार का अनुभव ही नहीं होता अपितु पाठकों को उन शब्दों के उच्चारण से श्रवणमात्र से एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है इस प्रकार के काव्यों की रचना में वे ही विद्वान समर्थ हो सकते है जिनका शब्दशास्त्र एवं कोष तथा संस्कृत वाड्मय पर असाधारण अधिकार हो। अतएव प्राचीन महाकवियों में भी माघ, भारवि प्रभृति कुछ विद्वान ही एकाक्षरी पदों की रचना करने में सफल रहे हैं। यह स्तुतिकाव्य सर्वथा मौलिक तथा नवीन काव्य शैली से अनुप्राणित है। इस सानुप्रासिक शैली पर किसी भी पूर्ववर्ती कवि-शैली का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है। इस शैली को पाण्डेय शैली नाम दिया जाना उचित होगा।

ISSN : 3048-6173

कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य के सफल चित्र भी प्रस्तुत किए है जो सहज भी है एवं प्राकृत भी। गंगा वर्णन में छोटे-छोटे पौधों के झुण्डों में, सुपारी के पौधों के समूह में झनझन से युक्त सलिल गिरने का शब्द छप छप तीव्र पवन के झोकों से छप छप की ध्वनि से युक्त, झिंगुरों की झणझणात्मक ध्वनि के साथ गुंजन करती हुई. झन की ध्वनि के साथ मकर की सवारी कर प्रवाहित होने वाली, पर्वतों के प्रपात से गिरने वाली इस महाघोर कलियुग में आर्ष मुनि वैदिक तथा बुद्धिजीवियों के आवास के निकट यह प्रवाहित होती है। कवि ने अपनी गहन दृष्टि से गंगातट पर होने वाले प्राकृत स्वरूप को जीया है। इसी प्रकार यमुना नदी, वनौषधि, आश्रम आदि का सहज चित्रण करते हुए अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'कुकुरमत्ता' जैसे शब्द का प्रयोग कर कवि ने जिस सामर्थ्य की प्रतीति करायी है. यह कल्पना का मूल स्त्रोत है. जिससे यह कहा जा सकता है कि कवि की प्रतिभा सर्वतोमुखी तथा दृष्टि व्यापक है।

कवि का पौराणिक ज्ञान विशद है। प्रत्येक श्लोक के साथ पौराणिक आख्यान निबद्ध है। कई श्लोकों के प्रत्येक पद में पौराणिक आख्यान निगूढ़ है। इन पौराणिक आख्यानों पर पृथक् से पुस्तक लिखी जा सकती है। इतने पारिभाषिक शब्द हैं कि उनकी व्याख्या करने के लिए अनेक ग्रन्थों का आश्रय लेना होगा। कवि ने दार्शनिक सूत्र भी समाविष्ट किए हैं यथा ब्रह्मिष्ठा, ब्रह्माण्डबीजा, भरधभरणम्, शमितशरटक, षडजं, षडाम्नायम्, ध्वस्कन्ताम्, हेठहीन, हेवाकी, हुहुहूतो, हत्तुं त्र्यक्षत्राणम्, ज्ञप्त्या, खोट्या, खरखेदम्, घनघृतघटक, झल्ला, झरौघे, झे, टंकेश्वरी, टलेशान्, ठालिन्यै, ठालिनी आदि अनेक ऐसे शब्द हैं जिन्हें बिना शब्दकोश के नहीं समझा जा सकता है। इस काव्य से शब्दकोश भी निर्मित हो गया, पांडित्य प्रयोग भी सफल हुआ है. साथ ही कवि ने उद्देश्य की सार्थकता को भी प्रतिपादित किया है। इस काव्य के गहन अनुशीलन से शास्त्रीय शब्द, पौराणिक आख्यान का ज्ञान तो होता ही है आधुनिक परिवेश तथा सामाजिक व्यवस्थाओं का दिग्दर्शन एवं सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान भी होती है।

यह एक चमत्कारपूर्ण, विशिष्ट, प्रौढ़, हृदयावर्जक स्तोत्र काव्य का संकलन है। इस काव्य की विशेषता यह है कि पूरा काव्य ही एकाक्षर अर्थात् वर्णमाला के आद्याक्षर अर्थात् एक व्यञ्जन से आरम्भ किया गया है तथा श्लोक का प्रत्येक पद भी उसी व्यञ्जन से आरम्भ हुआ है। ऐसी कृति कोई अन्य नहीं है जो क से ज्ञ तक व्यन्जनों से एक ही व्यञ्जन का आश्रय लेकर रचित हुई हों। कवि ने एक पद्य एक ही अक्षर से पूरा गुम्फित करके एकाक्षरचित्रम् प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत मुक्तक चित्रकाव्य दुरूह समास बहुल पांडित्य शैली में निबद्ध है। ये एक नवीन शैली है ऐसी शैली अन्य काव्यों में देखने को नहीं मिलती है। कवि का व्याकरणशास्त्र का ज्ञान प्रौढ़ पाण्डित्य से युक्त है एवं शब्दों का ज्ञान भण्डार अपरिमित है। कवि की सानुप्रासिक शैली का प्रभाव किसी पूर्ववर्ती शैली में परिलक्षित नहीं होता। विषय के प्रस्तुतिकरण की यह शैली प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ परम्परा से सर्वथा भिन्न है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने पुस्तक की

ISSN : 3048-6173

प्ररोचना में लिखा है- 'यद्यपि कवि की रचना अधिकांशतः प्रसादगुणयुक्त है फिर भी ऐसे चित्रकाव्यों में पद्यबन्ध की जटिलता अपरिहार्य होती है अतः ऐसे पदों को बिना टीका, व्याख्या या अनुवाद के नहीं समझा जा सकता यह तथ्य सुविदित है।"

प्रस्तुत काव्य का अंगीरस कविनिष्ठ देवविषयक (रति) भावध्वनि है। भावध्यनि होने के कारण यह उत्तम काव्य की श्रेणी में परिगणित किया जायेगा। प्रस्तुत काव्य में भक्तिरस भी है। कविवर्य ने कृष्ण की भक्ति का चित्रण भी कई श्लोकों में किया है। पूरे काव्य में वृत्त्यानुप्रास की छटा विद्यमान है. इसके अतिरिक्त यमक, उपमा, रूपक अलंकारों का भी प्रयोग कवि ने किया है।

कवि ने कृति में सम व विषम उभय वृत्तों का प्रयोग किया है। इक्कीस मुक्तकों में स्रग्धरा, आठ मुक्तकों में पश्यावक्त्र तथा दो मुक्तकों में उपजाति छन्द का प्रयोग किया है। काव्यशास्त्रीय परम्परा में अप्राप्य ८. व. ड. दव. थ इन वर्णों से श्लोक को निर्मित कर कवि ने नवीन परम्परा का विमोचन किया है। जो प्राचीन परम्परा के ठीक विपरीत है। कवि कृत इन वर्णों से प्रणीत श्लोक अन्त्याक्षरी इत्यादि में छात्रों के अनुकूल होने के कारण सराहनीय है।

पं. मोहनलाल पाण्डेय जी ने एकाक्षरी स्तुतिपरक मुक्तक चित्रकाव्य 'नतिततति जैसे दुरूह काव्य की रचना कर विद्वानों के सम्मुख एक विशिष्ट शैली का काव्य प्रस्तुत कर शब्दशास्त्र के अनुशीलन हेतु उन्हें प्रेरित किया है।

सन्दर्भ संकेत -

१. नतिततति श्लोक संख्या - ०१
२. तत्रैव श्लोक संख्या - ०९
३. तत्रैव श्लोक संख्या १०
४. तत्रैव श्लोक संख्या - १२
५. तत्रैव - श्लोक संख्या १४
६. तत्रैव श्लोक संख्या १९
७. तत्रैव श्लोक संख्या २०
८. तत्रैव श्लोक संख्या २१
९. तत्रैव श्लोक संख्या - २३
१०. तत्रैव श्लोक संख्या २७
११. तत्रैव श्लोक संख्या २८
१२. तत्रैव श्लोक संख्या ३०८
१३. नतिततति ३१ श्लोक संख्या
१४. तत्रैव श्लोक संख्या - ३२
१५. तत्रैव प्ररोचना - पृष्ठ संख्या ०२

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

ब्रह्माण्डे संस्कृतभाषायाः योगदानम्

डॉ. मनीषा शर्मा
प्राचार्य
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुरा बाग

" या भाषा वाक्यां मृदुतां योजयति सा संस्कृतभाषा अस्ति।अशिष्टं विनयं करोति या संस्कृतभाषा, जीवनस्य सारं या भाषा उपदिशति सा संस्कृतम्,पाषाणहृदयं द्रवयति या संस्कृतभाषा,असंस्कृतं संस्कृतं या भाषां करोति सा संस्कृतभाषा"

संस्कृते अपि परिष्कृतं व्याकरणं, स्वरविज्ञानं च अस्ति यत् मानवशरीरविज्ञानाधारितम् अस्ति । प्राचीनभारतीयसभ्यतायाः प्रज्ञां सृजनशीलतां च प्रतिबिम्बयति। चिकित्साशास्त्रम्, खगोलशास्त्रम्, गणितम् इत्यादीनां विविधानां वैज्ञानिकविषयाणां विकासे संस्कृतस्य महती भूमिका अस्ति। हिन्दुधर्मे, जैनधर्मे, बौद्धधर्मे, सिक्खधर्मे च संस्कृतभाषा पारम्परिकसञ्चारसाधना अभवत्। प्राचीनकाव्य-नाट्य-विज्ञानयोः, धार्मिक-दार्शनिक-ग्रन्थेषु च संस्कृत-साहित्यस्य उपयोगस्य सौभाग्यं वर्तते। मानवमुखे निर्मितानाम् शब्दानां स्वाभाविकप्रगतेः अवलोकनेन भाषा उत्पन्ना इति मन्यते, अतः शब्द: भाषानिर्माणस्य महत्त्वपूर्णतत्त्वं मन्यते एतत् एकं प्रमुखं कारणं यत् संस्कृतं काव्यसमृद्धं अस्ति, तस्य व्यञ्जकगुणं च यत् मानवकर्णं शान्तं सिद्धध्वनिद्वारा उत्तमार्थं बहिः आनयति। वैदिकसंस्कृते अमूर्तसंज्ञाः दार्शनिकपदानि च सन्ति ये अन्यभाषायां न लभ्यन्ते। व्यंजनानि स्वराश्च लचीलाः सन्ति येन सूक्ष्मविचाराः व्यञ्जयितुं समेहिता भवन्ति। सर्वेषु भाषा एकस्यार्थस्य वा विषयस्य वा व्यञ्जनार्थं व्याप्तेः, जटिलतायाः, शतशः शब्दानां च कारणेन आधारहीनः अनन्तः समुद्रः इव अस्ति। शास्त्रीय संस्कृत - अष्टाध्यायी

शास्त्रीयसंस्कृतस्य उत्पत्तिः वैदिककालस्य अन्ते अभवत् यदा उपनिषदः अन्तिमाः पवित्रग्रन्थाः लिखिताः आसन्, तदनन्तरं पाणिनिः पाणिवंशजः व्याकरणभाषाविज्ञानसंशोधकः च भाषायाः परिष्कृतं संस्करणं प्रवर्तयति स्म पाणिनीयस्य कालरेखा क्रि.पू.चतुर्थशताब्द्याः परितः कल्प्यते, यदा सः स्वस्य 'अष्टाध्यायी' इति ग्रन्थस्य परिचयं कृतवान्, यस्य अर्थः अष्टाध्यायः, संस्कृतव्याकरणस्य एकमात्रं उपलब्धं आधारभूतं विश्लेषणात्मकं च ग्रन्थं निर्मितवान्। अद्यत्वे संस्कृतव्याकरणस्य शब्दावल्याः च एकमात्रं स्रोतः इति मन्यते, यतः पूर्वं यत् किमपि आसीत् तत् सर्वं पाणिनीयस्य अष्टाध्याय्यां तेषां उल्लेखं विहाय कदापि न अभिलेखितम् आसीत्

अष्टाध्यायीयां ३९५९ व्यवस्थिताः नियमाः सन्ति ये संक्षेपेण अक्षीणाः सन्ति, ये भाषायाः शब्दनिर्माणस्य च अद्भुतविश्लेषणेन, व्याख्यानेन, प्राधान्यप्रयोगेन च परिपूर्णाः सन्ति एषा भाषा एतावता विपुला अस्ति यत् वर्षावर्णनार्थं

ISSN : 3048-6173

२५० शब्दाधिकाः, जलस्य वर्णनार्थं ६७ शब्दाः, पृथिव्याः वर्णनार्थं ६५ शब्दाः च अन्यवर्णनेषु सन्ति एतेन वर्तमान आधुनिकभाषाभिः सह तुलने संस्कृतस्य उदारता सिद्धा भवति। परन्तु हिन्दुधर्मस्य उपजातिः स्वभाषायां, जातिः, पंथः, श्रेणी च भिन्नाः भवेयुः, संस्कृतं एकमात्रं पवित्रभाषा इति मन्यते स्वीकृतं च यत् सर्वैः एकमात्रं उपलब्धं पवित्रसाहित्यं जनयति, यद्यपि भारते ५००० भण्डारः अस्ति भाष्यमाणाः भाषाः। पाणिनिः भाषायाः मानकीकरणस्य उत्तरदायी आसीत्, या अद्यपर्यन्तं बहुरूपेण प्रचलति। संस्कृतभाषा वाच्यभाषारूपेण दुर्लभा, भारतस्य केषुचित् प्रदेशेषु भाष्यते, केचन तस्याः प्रथमभाषा इति अपि वदन्ति, परन्तु तस्य संविधाने भारतस्य १४ मूलभाषासु अन्यतमा इति गर्वेण उल्लिखिता अस्ति। कर्नाटकसङ्गीतस्य भजन-श्लोक-स्तोत्र-कीर्तन-रूपेण बहुधा अस्य उपयोगः भवति, सर्वे देवताभ्यः विविधाः स्तोत्राणि, ईश्वरपूजायाः गीतानि, मन्त्राणि च सूचयन्ति।

अन्यभाषासु प्रभावः

संस्कृतस्य अन्येषु भारतीयभाषासु, यथा सम्प्रति भारतस्य राजभाषासु अन्यतमं हिन्दीभाषा, कन्नड-मलयालम्-आदिषु इन्डो-आर्यभाषासु च प्रमुखः प्रभावः अभवत्। संस्कृतभाषायां बौद्धग्रन्थानां प्रभावेन तेषां अनुवादप्रसारेण च चीन-तिब्बतीभाषासु प्रभावः अभवत्। भाषारूपेण तेलुगुभाषा अत्यन्तं शाब्दिकरूपेण संस्कृतं मन्यते, यस्मात् अनेके शब्दाः ऋणं गृहीतवन्तः। चीनदेशेन संस्कृततः बहुविधाः किन्तु विशिष्टाः शब्दाः उद्धृताः इति कारणतः चीनीभाषायां प्रभावः अभवत्। तदतिरिक्तं थाईलैण्ड-श्रीलङ्का-देशयोः संस्कृतेन प्रचण्डः प्रभावः अस्ति, तत्र अनेके समानध्वनिशब्दाः सन्ति। जापानीभाषा अन्यतमा अस्ति या संस्कृतेन प्रभाविता अस्ति, तत्सहितं इन्डोनेशियादेशस्य आधुनिकभाषा, मलेशियादेशे भाष्यमाणायाः मलयभाषायाः पारम्परिकभाषा च। फिलिपिन्स्-भाषायाः संस्कृततः अल्पः प्रभावः अस्ति, परन्तु स्पेन्भाषायाः अपेक्षया न्यूनः, उदाहरणार्थम्। सर्वेभ्यः अपि उपरि आङ्ग्लभाषा, वर्तमान आधुनिका अन्तर्राष्ट्रीयभाषा अपि संस्कृतेन प्रभाविता भूत्वा प्राचीनभाषायाः अनेके ऋणशब्दाः उद्धृताः (उदाहरणार्थं 'प्रचिन' इत्यस्मात् 'आदिम', ऐतिहासिकस्य अर्थः, 'अम्ब्रोसिया' 'अमरुता'

अर्थात् देवानाम् आहारः 'आक्रमणम्' इत्यर्थात्। आक्रामकं कर्म कृत्वा, 'पाठ' इत्यस्मात् 'मार्गः' अर्थात् मार्गः वा मार्गः, 'पुरुषः' 'मनु' अर्थात् पुरुषः मानवः

संस्कृतस्य दीर्घः पवित्रः च इतिहासः प्रायः देवानाम् उपासनायाः च अनुसन्धानं भवति। देवानां वाच्यभाषारूपेण आरभ्य पृथिव्यां अधः आगत्य शुद्धतायाः क्षीणतां प्राप्तवती यतोहि परिवर्तनशीलव्याख्याः, सटीकव्याकरणं, तस्य प्रयोगस्य जटिलता च अल्पैः एव स्वीकृता, विशालतायां, अवगमने च अजेयत्वेन बहुभिः परिहृता च अस्य विशालः शब्दावली, व्याकरणगद्यसमृद्धिः च अस्ति चेदपि अद्यत्वे बहवः प्राचीनाः ग्रन्थाः ग्रन्थाः च संस्कृततः अनुवादिताः सन्ति, यतः संस्कृतात् श्रेष्ठः कोऽपि अतीतस्य एतादृशं विलासपूर्णं साहित्यबोधं दातुं न शक्नोति यतः एतत् सम्यक् मानवीयव्यञ्जनस्य साधनरूपेण कार्यं करोति। सम्यक् प्रशंसितः प्रसिद्धः इतिहासकारः लेखकश्च विलियम कुक् टेलरः स्वीकरोति यत् "अस्याः भाषायाः निपुणतां प्राप्तुं प्रायः जीवनस्य श्रमः एव; तस्य साहित्यं अक्षमं दृश्यते" इति।

ISSN : 3048-6173

प्राचीन भारत के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष
राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्

वेदों में हविर्यज्ञों तथा सोम यज्ञों का वर्णन मिलता है, तो धर्मसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों में इन पाँच यज्ञों का वर्णन मिलता हैं - देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और ब्राह्मयज्ञ। देवताओं के निमित्त जो यज्ञ-होम किये जाते हैं वे देवयज्ञ, सुपात्र के लिये अन्न वस्त्र आदि के दान करने को भूतयज्ञ, पितरों के लिये पिण्ड दान और तर्पण करना पितृयज्ञ, अतिथि की सेवा करना मनुष्ययज्ञ और विद्यार्थियों को शिक्षा देना ब्रह्मयज्ञ है- 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः' (मनुस्मृति 3-70)। वेदों का अध्ययन करना भी ब्रह्मयज्ञ ही है। याज्ञवल्क्य की सम्मति के अनुसार वेदों के अतिरिक्त उपवेद, पुराण, गीता, उपनिषद् आदि का स्वाध्याय करना भी ब्रह्मयज्ञ ही है। अतएव इस यज्ञ को स्वाध्याय यज्ञ एवं ऋषियज्ञ भी कहा गया है। जो अध्ययन करेगा वही अध्यापन कर सकेगा। गुरु परम्परा का सूत्र ब्रह्म तक जाता है। गुरु संस्था में परमगुरु, परमेष्ठी गुरु और परात्पर गुरु होते हैं। परात्पर ही सृष्टि का आरम्भल बिन्दु अव्यय पुरुष का निर्माण करता है। इसीलिये गुरु को **'साक्षात् परं ब्रह्म'** कहा जाता है।

जन्म से कोई विप्र या द्विज नहीं होता है। जो व्यक्ति संस्कारित एवं चरित्रवान होता है वही विप्र कहलाने का आधकारी होता है। उस विप्र के लिये ही अध्ययन करना और अध्यापन करना, स्वयं यज्ञ करना और यज्ञ करवाना तथा दानग्रहण करना और दान देना ये छह कर्म कहे गये हैं-

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणा नामकल्यत् ।।

- मनुस्मृति 1-88

ISSN : 3048-6173

अध्ययन-अध्यापन में वही विप्र अभिरुचि रख पाता है, जो इस ब्रह्मयज्ञ के महत्त्व को समझता है, स्वीकार करता है और उसे चरितार्थ करता है। सभी प्रकार के इन यज्ञों को वैदिकदर्शन में विश्लेषित किया गया है। वस्तुतः ये यज्ञ वैदिक दर्शन के प्रयोगात्मक विज्ञान हैं। ब्रह्मयज्ञ का निर्वहन करने वाले व्यक्ति के मस्तक (मस्तिष्क) में चिन्तन की चिन्तामणि सुशोभित होती है, तथा संकल्पों की कौस्तुभमणि वक्षस्थल पर शोभा पाती है।

ज्ञान और ब्रह्म पर्याय शब्द हैं। शिक्षण संस्थाओं में गुरु **'तत् त्वं असि'** की शिक्षा देते हैं, किन्तु इसके लिये गुरु शिष्य दोनों में पात्रता होनी चाहिये। श्रेष्ठ एक शिष्य की बौद्धिक क्षमता का विकास कर 'अहं ब्रह्मास्मि' के लक्ष्य तक पहुंचाता है। इसके पश्चात् ही वह व्यष्टिभाव से समष्टिभाव की ओर गमन करता है तब जाकर उसे वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है। प्राचीन काल की शिक्षा जो गुरुकुलों में दी जाती थी- वह इसी प्रकार की शिक्षा होती थी।

रामायण काल में वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य तथा भरद्वाज के आश्रमों में ऐसे ही गुरु कुल थे। महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में मुख्य रूप से कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाती थी। महर्षि वशिष्ठ को कुलपति कहा गया है- (रघुवंश 1-95)। कुलपति उसे कहा जाता था जो अध्यापन के साथ दश हजार शिष्यों के आवास एवं अन्नपान की भी सुविधा प्रदान करता था।

गंगा के पास तमसा नदी के तट पर महर्षि वाल्मीकि ने भी विशाल शिक्षा संस्थान स्थापित किया था, जिसके कुलपति स्वयं वाल्मीकि ही थे। महेन्द्र पर्वत पर परशुरामजी शस्त्रसंचालन की शिक्षा देते थे। भीष्म और द्रोण आदि ने यहाँ शिक्षा प्राप्त की थी। कर्ण ने भी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास किया था। महाभारत के अनुसार एक आचार्य भरद्वाज का आश्रम हरिद्वार में था। राजा द्रुपद ने द्रोण के साथ इसी आश्रम में धनुर्वेद की शिक्षा ली थी। आचार्य द्रोण शस्त्र और शास्त्र दोनों के पारङ्गत विद्वान् थे। महर्षि व्यास का आश्रम हिमालय पर्वत पर बदरी क्षेत्र में था। इस आश्रम में वेदव्यास वेदाध्यापन करते थे। इसी आश्रम में सुमन्तु, वैशम्पायन, जैमिनि तथा पैल वेदों का अध्ययन करते थे। महर्षि कण्व के आश्रम में न्याय, तर्क, व्याकरण, छन्द आदि विषयों के प्रसिद्ध आचार्य थे। ये आचार्य इन विषयों से सम्बन्धित विस्तृत व्याख्यान दिया करते थे।

इस आश्रम में जो यज्ञ होते थे, उन विधानों के आचार्य नियत थे। यह आश्रम मालिनी नदी के तट पर था। इसी प्रकार दण्डकारण्य में महर्षि अगस्त्य का आश्रम था, जहाँ वे कई विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। इस आश्रम में ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, सोम, वरुण आदि देवों के स्थान बने हुये थे।

ISSN : 3048-6173

प्राचीन काल के इन गुरुकुलों में प्रवेश हेतु प्रार्थी को कुछ प्रश्नों का उत्तर देना होता था। जिसे उनके लिये घोषणा या प्रतिज्ञा का निर्धारित वाक्य होता था। दुष्ट प्रकृति, अनियन्त्रित, मनोविकारी आदि का वहाँ प्रवेश निषिद्ध था। छात्रों से किसी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। हाँ, दीक्षा के पश्चात् चाहे तो स्नातक गुरु-दक्षिणा दे सकता था। गुरुकुलों की व्यवस्था का तथा गुरुजनों के भरण-पोषण का भार सारा शासन वहन करता था। छात्रों से किसी प्रकार का उपहार ग्रहण नहीं किया जाता था, चाहे वह कितना धनी क्यों न हो।

पंचनद (पंजाब) प्रदेश का रावलपिण्ड के उत्तर-पश्चिम की ओर सरायकलां के पास तक्षशिला विश्वविद्यालय महाभारत काल से ही पूरे भारत वर्ष में विख्यात था। । यहाँ पर आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु, आरुणि आदि ने शिक्षा पायी थी। इतिहासकारों के अनुसार राम के अनुज भरत के दो पुत्र हुये थे - तक्ष और पुष्कल । इनमें तक्ष ने तक्षशिला बसायी तो पुस्कल ने पुष्कलावत । कई इतिहासकार इस तक्षशिला को ईशा से दस हजार वर्ष पूर्व का मानते हैं। यहाँ पर वेदों के अतिरिक्त आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष, कृषि, चित्रकला आदि बहुत से विषयों की सर्वाङ्ग पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। आचार्य पाणिनि और कौटिल्य को भी यहाँ ही शिक्षा मिली थी। यह विश्वविद्यालय छठी शताब्दी तक ही उन्नतशील रहा था। इसके बाद हूण आक्रमणकारियों ने इस विश्वविद्यालय का सर्वनाश कर दिया।

इस तक्षशिला विश्वविद्यालय में चिकित्साशास्त्र की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। यहाँ पर चिकित्सा विज्ञान का पाठ्यक्रम सात वर्ष का था। इसके बाद प्रत्येक छात्र को छह माह तक कोई विशेष शोध- कार्य करना पड़ता था। बौद्धकालीन प्रसिद्ध शल्य शास्त्री कुमारभर्तृ जीवक ने भी यहाँ ही शिक्षा प्राप्त की थी। आत्रेय गोत्रीय आचार्य कपिलाक्ष का ही शिष्य था जीवक। ये आत्रेय, अग्निवेश आदि के गुरु आत्रेय पुनर्वसु से भिन्न आत्रेय थे।

आयुर्वेद के इतिहास के अनुसार आचार्य पुनर्वसु आत्रेय ने पञ्चाल देश की राजधानी काम्पिल्य में अपना विश्वविद्यालय स्थापित किया था जहाँ पर चिकित्सा विषयक कई वैज्ञानिक अनुसन्धान किये गये थे। यहाँ पर ही अग्निवेश भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत, क्षार पाणि आदि शिष्यों ने इन आचार्य से ज्ञान प्राप्त किया था। वर्तमान में उपलब्ध चरकसंहिता इन्ही आत्रेय के उपदेशों का संकलन है, जिनका संकलन उन के पटु शिष्य अग्निवेश ने किया था। जो कालान्तर में प्रतिसंस्कृत होकर 'चरक संहिता' के नाम से जानी जाने लगी।

तक्षशिला के बाद नालन्दा विश्वविद्यालय का नाम आता है। यह भी संसार का प्रसिद्ध ज्ञानपीठ था। बिहार प्रान्त के राजगीर में स्थित यह विश्वविद्यालय 456 एकड़ भूमि पर फैला हुआ था। इसकी स्थापना गुप्तकाल के समय पांचवी

ISSN : 3048-6173

सदी में हुई थी। यहाँ पर भारतीय ज्ञान-विज्ञान, धर्मशास्त्र, साहित्य, दर्शन, कला आदि बहुत से विषयों की शिक्षा दी जाती थी। जब बौद्धधर्म की विजय पताका सारे एशिया में फहर रही थी, तब भारतीय ज्ञान-विज्ञान का मूलस्रोत यह नालन्दा विश्वविद्यालय ही था। यहां अध्ययन किये बिना शिक्षा अधूरी समझी जाती थी। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि अब इसकी पुनः प्रतिष्ठा के प्रयास किये जा रहे हैं।

इस विश्वविद्यालय में आठ विस्तृत कक्ष तथा सौ प्रकोष्ठ थे। सभा सदन दस भागों में विभक्त था। विद्यार्थियों के लिये तीन सौ छात्रावास भवन थे। वहाँ रत्नसागर, रत्नोदधि तथा रत्नरंजक नामक तीन विशाल पुस्तकालय थे जहाँ हीनयान, महाज्ञान, वज्रयान आदि बौद्धधर्म विषयक ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य विविध विषयों के ग्रन्थ भी विद्यमान थे। शिक्षकों की संख्या वहीं 1500 थी, जिनमें शीलभद्र मुख्य थे। घोर वज्रयान के विकृत रूप के कारण और मुगलों के आक्रमण के कारण इस प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र को मिट्टी में मिला दिया। अब यहाँ पुनः निर्माण हो रहा है। सितम्बर 2014 में यहाँ पुनः अध्ययन अध्यापन प्रारम्भ हो गया है।

इनके अतिरिक्त एक विश्वविद्यालय विक्रमशिला भी था जो वर्तमान बिहार के भागलपुर जिले के सुलतानगंज में था। यहाँ पर अध्यापन हेतु अपने विषय के 108 विद्वान् थे। इनमें आठ महापंडित थे। यहाँ पर भी देश- विदेश से आकर छात्र शिक्षा पाते थे। सन् 1193 ईस्वी में मुसलमानों ने मुहम्मद-बिन - आख्तियार के नेतृत्व में पालवंशी राजा गोविन्दपाल को मार कर विक्रमशिला को भी नालन्दा की भाँति खूब लूटा तब से यह विश्वविश्वविद्यालय भी सदा के लिये अन्धकार में विलीन हो गया।

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

"NEP 2020: Addressing Challenges and Opportunities in Teacher Education"

Mrs Prachi Batwara
Rajasthan Shikshak Prashikshan Vidyapeeth
Shahpura Bagh, Jaipur

ABSTRACT

Education is crucial for societal development, and the quality of teachers plays a central role in this process. Key factors such as teachers' cognition, dedication, teaching techniques, professional approach, and intrinsic motivation are vital for a high-quality teaching-learning experience. Producing competent teachers is increasingly challenging in today's complex educational environment, necessitating effective teacher education programs.

In India, significant reforms, such as the National Curriculum Framework (2005) and the National Education Policy (NEP) 2020, have aimed to improve teacher education. The NEP 2020, particularly in Chapter 15, outlines major changes to enhance teacher training by integrating multidisciplinary higher education institutions. By 2030, a 4-year integrated B.Ed. will become the minimum qualification for school teachers. This paper analyzes NEP 2020 and SCERT's position on the challenges and opportunities in the teacher education sector.

Keywords: Teacher Education, Policy issues, NEP-2020.

INTRODUCTION

Education is fundamental to the development of any society and is inherently dynamic, adapting to the needs and challenges of the times. Each country's education system plays a critical role in fostering sustainable progress. In ancient India, the purpose of education extended beyond mere knowledge acquisition; it aimed at the holistic development and liberation of the self. This system produced great scholars and had a profound impact on global culture and philosophy. The rich intellectual and cultural legacies of India must not only be preserved but also researched, enhanced, and adapted to meet contemporary needs through education.

As the world evolves, driven by rapid technological advancements, India's education system must also undergo continuous reform to maintain its relevance and effectiveness. To position India as

ISSN : 3048-6173

a global leader in knowledge and innovation, it is crucial to implement up-to-date educational reforms. Only through such transformations can India achieve its goal of becoming a developed nation and one of the top three economies in the world.

Recognizing this need, the Government of India introduced the National Education Policy (NEP) 2020, approved by the Union Cabinet on July 29, 2020. This policy marks a significant departure from the previous National Policy on Education, last revised in 1992. One of the key contributions of the earlier policy was the Right to Education (RTE) Act of 2009, which legally enshrined the goal of universal elementary education.

The NEP 2020 reinterprets education from philosophical, sociological, and pragmatic perspectives, emphasizing the need for teachers to be at the heart of educational reforms. For meaningful access to education, society requires highly motivated, qualified, and well-trained teachers who can inspire and lead future generations.

OBJECTIVES OF RESEARCH STUDY

- Analyze the historical evolution of teacher education policies in India.
- Assess the impact of NEP 2020 on the current teacher education system.
- Explore the role of teachers in implementing educational reforms under NEP 2020.
- Identify challenges and opportunities presented by NEP 2020 in teacher education.
- Propose recommendations for the effective implementation of NEP 2020 in teacher education.

RESEARCH METHODOLOGY

The research methodology for this study begins with an extensive literature review, focusing on the evolution of teacher education policies in India, particularly the provisions of the National Education Policy (NEP) 2020. This review includes academic papers, government reports, and policy documents to establish a comprehensive understanding of the historical context and current landscape of teacher education. The study also incorporates qualitative research methods, such as interviews and focus group discussions with education experts, policymakers, and teachers. These methods aim to gather insights on the practical implications of NEP 2020, its potential impact on teacher quality and training, and the challenges faced during its implementation.

In addition to qualitative analysis, the study employs a comparative approach, analyzing NEP 2020 alongside previous educational policies to identify shifts in priorities and strategies. Case studies of specific teacher education programs and institutions are conducted to observe the real-world effects of NEP 2020 on curriculum development and teacher training. Data collection from

ISSN : 3048-6173

primary and secondary sources, including surveys and official statistics,supports the evaluation of the effectiveness of current teacher education programs. Field research, where feasible, is carried out to directly observe the implementation of NEP 2020 in educational institutions, providing a practical perspective on its impact and the challenges encountered in the field.

FINDINGS OF RESEARCH STUDY

The National Education Policy (NEP) 2020 recommends major changes in the Teacher Education scenario in chapter -15 of the NEP-2020 under part II which divided into eleven sub points. The main objectives of NEP is to "ensure that teachers are given the high quality training in content, pedagogy, and practice, by converting the teacher education system into multidisciplinary HEIs of colleges and universities, for 4-year integrated B.Ed. offered, by 2030,will become the minimal degree qualification for school teachers" (NEP2020 -Page 42: 15.4, 15.5).While analysing the present Teacher Education Programmes in the lens of NEP 2020, it is a curious concerns of opportunities and at the same time challenges for Teacher education phase.

- **Teacher Preparation in Indian Values**
- **Closing down Substandard Standalone Teacher Education Institutions Merging Teacher Education into the composite Multidisciplinary system Dual Degree Provision:**
- **Secondary specialization for subject teachers as Special Educators All Teacher Education will transform in Multidisciplinary institutions**
- **Departments of Education in Universities**
- **Admission in Pre-service training programmes through Subject and Aptitude Test by National Testing Agency:**
- **Rich Faculty profile in departments of Education for Conceptual Developmen Reorientation of PH.D. Programmes**
- **In-service Continuous Professional Development for university and college teachers**
- **National Mission for Mentoring**

These are further examined and illustrated below:

Teacher Preparation in Indian Values

The NEP 2020 emphasizes the integration of Indian values and cultural heritage into teacher education, recognizing the importance of grounding future educators in the country's rich

philosophical and ethical traditions. This approach aims to produce teachers who not only excel in their subject areas but also embody and impart Indian values such as respect, empathy, and social responsibility. The study finds that while this initiative is crucial for preserving andpromoting Indian culture, there is a need for a well-defined curriculum and training modules to effectively integrate these values into teacher preparation programs.

Closing Down Substandard Standalone Teacher Education Institutions

The NEP 2020 mandates the closure of substandard standalone teacher education institutions, which have proliferated over the years, often compromising on quality. The study reveals that this move is widely supported, as it addresses the issue of low-quality teacher training programs that have failed to meet educational standards. However, the process of identifying and closing these institutions needs to be transparent and systematic, ensuring that only those institutions that do not meet the necessary criteria are shut down, while others are given the opportunity to improve and align with the new guidelines.

Merging Teacher Education into the Composite Multidisciplinary System

One of the significant reforms proposed by the NEP 2020 is the merging of teacher education programs into a broader multidisciplinary system within higher education institutions. This integration is designed to enhance the quality of teacher education by providing a more holistic and comprehensive educational experience. The study finds that this approach has the potential to produce well-rounded teachers with a broader perspective, but it requires careful implementation to ensure that teacher education does not lose its specialized focus within the multidisciplinary environment.

Dual Degree Provision

The NEP 2020 introduces the concept of a dual degree provision, allowing students to simultaneously pursue a degree in education alongside another subject of interest. This initiative is aimed at broadening the skill set of future teachers and making them more versatile in their professional roles. The study highlights the potential benefits of this provision, particularly in creating educators who are both subject matter experts and skilled teachers. However, it also notes the challenges in designing a curriculum that balances both degrees effectively without overwhelming students.

Secondary Specialization for Subject Teachers as Special Educators

The policy encourages subject teachers to acquire a secondary specialization as special educators, addressing the growing need for inclusive education. The study finds that this provision is

a positive step toward ensuring that all students, including those with special needs, receive quality education. However, it also identifies the need for robust training programs and resources to equip teachers with the necessary skills and knowledge to effectively take on this dual role.

Transformation of Teacher Education into Multidisciplinary Institutions

NEP 2020 envisions transforming all teacher education programs into multidisciplinary institutions, aiming to foster a more integrated and well-rounded approach to teacher education. The study finds that this transformation has the potential to significantly improve the quality of teacher training by exposing future educators to a diverse range of subjects and perspectives. However, it also emphasizes the need for a clear implementation plan to ensure that the unique aspects of teacher education are preserved within this multidisciplinary framework.

Departments of Education in Universities

The policy calls for strengthening the role of Departments of Education within universities, recognizing their importance in the broader teacher education ecosystem. The study finds that well-resourced and effectively managed Departments of Education can play a crucial role in the development of high-quality teacher training programs. However, it also identifies the need for increased funding, better faculty recruitment, and ongoing professional development to realize this potential fully.

Admission in Pre-Service Training Programs through Subject and Aptitude Test by National Testing Agency

The NEP 2020 mandates that admissions to pre-service teacher training programs should be conducted through a combination of subject and aptitude tests administered by the National Testing Agency (NTA). The study finds that this approach is likely to improve the selection process by ensuring that candidates possess both the necessary academic knowledge and the aptitude for teaching. However, it also notes that the design and implementation of these tests must be rigorous and fair to avoid potential biases and ensure a diverse pool of candidates.

Rich Faculty Profile in Departments of Education for Conceptual Development

The policy emphasizes the importance of having a rich and diverse faculty profile in Departments of Education to foster conceptual development among students. The study finds that attracting and retaining high-quality faculty is essential for the success of teacher education programs. It suggests that universities should focus on offering competitive salaries, professional development opportunities, and a supportive work environment to build a strong faculty base.

ISSN : 3048-6173

Reorientation of Ph.D. Programs

The NEP 2020 calls for the reorientation of Ph.D. programs in education to align more closely with the needs of the teaching profession. The study finds that current Ph.D. programs often lack a practical focus, with many dissertations failing to address real-world educational challenges. Reorienting these programs to include more applied research, case studies, andfieldwork could make them more relevant and beneficial to both future educators and the education system as a whole.

In-Service Continuous Professional Development for University and College Teachers

The policy highlights the importance of continuous professional development (CPD) for university and college teachers to keep them updated with the latest pedagogical practices and subject knowledge. The study finds that CPD is crucial for maintaining the quality of education in higher education institutions. However, it also notes that for CPD programs to be effective, they need to be well-designed, relevant to the teachers' needs, and supported by institutional policies that encourage ongoing learning and development.

National Mission for Mentoring

The NEP 2020 proposes a National Mission for Mentoring to provide continuous professional support to teachers throughout their careers. The study finds that this initiative has the potential to significantly improve the quality of teaching by offering guidance, feedback, and professional growth opportunities to teachers at all stages of their careers. However, it also highlights the need for a robust infrastructure, including a network of experienced mentors, adequate funding, and a clear framework for the mission's implementation to ensure its success. After 2030, at all levels of school education i.e. at foundational stage, preparatory stage, Middle and secondary stage, 4-years integrated B.ED degree holders will be appointed as teachers with dual major specialization (Education and subject). Till 2030, there will be 2-years B.Ed programmes for 3-year UG and 1-year B.Ed for 4-years UG and for those who have master's degree in other subjects. M.Ed will be of one year duration with research focus. All interestedretired/seniorfacultywillbeutilizedshorttermorl o n g term for guiding/mentoring/professional support for research/training/Innovation. A national mission for mentoring will be established separately.

CONCLUSION

The National Education Policy (NEP) 2020 sets forth a visionary blueprint for reforming India's education system, with a particular focus on revitalizing teacher education. Recognizing the crucial role that teachers play in shaping the future of the nation, NEP 2020 emphasizes the need for a quality education system that is deeply rooted in Indian ethos, traditions, and cultural diversity. This approach aims to not only preserve and promote India'srich heritage but also position the country as a

global leader in knowledge and education, ultimately achieving the status of "Vishwaguru."

However, while the aspirations of NEP 2020 are commendable, the success of these reforms hinges on the meticulous design and implementation of a clear and actionable roadmap. Urgent reforms in teacher education are necessary to bridge the gap between the current state of the education system and the ambitious goals set by the policy. This includes addressing the quality of teacher preparation, closing down substandard institutions, integrating teacher education into multidisciplinary frameworks, and ensuring continuous professional development for educators.

The mission to transform India into a global knowledge powerhouse is indeed aspirational, but it requires a pragmatic approach to implementation. This involves not only policy formulation but also ensuring that the necessary resources, infrastructure, and support systems are in place to realize the vision of NEP 2020. The challenge lies in translating these high ideals into tangible outcomes that benefit both educators and students, thereby fostering a more enlightened and empowered society. By carefully framing and executing the implementation strategy, India can pave the way for a robust and dynamic education system that upholds its cultural legacy while meeting the demands of a rapidly changing global landscape.

REFERENCES

- Government of Himachal Pradesh, State Council of Educational Research & Training. (2022). Meeting for State Focus Group - NEP 2020. Solan: Author.
- Ahangar, S.D. and Ayub, Mohd. (2022). NEP-2020 and Teacher Education: Some Issues. An International Journal of Creative Research Thoughts, 10(4), a440-a442. Retrieved from https://ijcrt.org/papers/IJCRT2204054.pdf retrieved on March 3, 2023.
- Smitha, S. (2020). National Education Policy (NEP) 2020): Opportunities and Challenging in Teacher Education. International Journal of Management, 11(11), pp 1881-1886.Retrievedf r o m file:///C:/Users/Dr%20Kulwant%20Singh/Downloads/NATIONAL_EDUCATION_POLICY_NEP_2020_OPPOR.pdf retrieved on March 12, 2023.
- Pandey, N. (2021). Indian National Education Policy 2020. TechnoLEARN: An International Journal of Educational Technology, 11(1), 23-27.
- Government of India, Ministry of Education. (2020). National Education Policy – 2020. New Delhi,India:Author. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf retrieved on Feb. 12, 2022.
- https://www.education.gov.in/shikshakparv/docs/rajana_arora.pdf
- https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_EN_Revised.pdf

ISSN : 3048-6173

राष्ट्रोपनिषत्

रचयिता
आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कार
(महामहिम-राष्ट्रपति-सम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्री
सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा
एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता
महामण्डलेश्वरः स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरी
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थानम्, जयपुरम्

अथ सकृद् गुरुपूर्णिमा-पर्वणि मम शिष्य-प्रशिष्याः प्राचीनाः ।
मामर्चितुमुपागमन्, ममावासे विद्या वैभव-भवनेऽत्र ॥1॥

एक बार गुरुपूर्णिमा के पर्व पर मेरे प्राचीन शिष्य - प्रशिष्य मेरी अर्चना करने के लिए यहाँ मेरे आवासस्थल विद्या-वैभव-भवन पर आये ।

Once, on the occasion of Guru Purnima, my students and their students came to my residence, Vidya Vaibhav Bhawan, to express their respect.

तानहमवलोक्य चिराद्, अतीव मुदितोऽभवं मनस्येव मनसि ।
हृष्ट-पुष्टानपि तान्, म्लान-मुखान् दृष्ट्वा दुःखिनोऽनुमितवान् ॥2॥

उनको बहुत समय पश्चात् देख कर मैं मन ही मन में अत्यन्त प्रमुदित हुआ और हृष्ट-पुष्ट भी उनको मलिन-मुख देखकर उनको दुःखी होने का अनुमान किया ।

I was very happy to see them after such a long time, but although they looked healthy (and well fed), I saw unhappiness on their faces.

तेषामहं तु कुशलं, पृष्टवान् शङ्कितः शङ्कितः सन्नेव ।
अपि कुशलिनः स्थ यूयं ? लोकान् स्वविद्ययोपकुरुत च सन्ततम् ? ॥3॥

शङ्कित शङ्कित होते हुए ही मैंने उनसे उनका कुशल पूछा - 'तुम सब सकुशल तो हो और लोगों को अपनी विद्या से सतत उपकृत तो कर रहे हो ?'

Filled with doubt I have asked about their welfare – "Is everything in order and are you continuously spreading the knowledge?"

ISSN : 3048-6173

गार्हस्थ्य- सञ्चालने, तु न जायते किमपि काठिन्यं भोः ।
अपि युष्मत्सन्तानाः, सेवन्ते युष्मान् विनीताः ? ॥4॥

अरे ! गृहस्थी को सञ्चालित करने में तो कोई कठिनाई नहीं होती ? तुम्हारी विनीत सन्तानें तो तुम्हारी सेवा करती हैं न ?

Hey! There are no problems in taking care of own's home. Your respectful children are serving you, aren't they?

स्वमहं तु नार्चयं तैः, शारदाम्बामेवाभ्यार्चयन् पूज्याम्।
ततो मत् प्राप्ताशिषः, स्वापूर्णकुशलं त एवं मां न्यगदन् ॥5॥

मैंने उनसे अपने आपको तो अर्चित नहीं करवाया, पूज्य शारदाम्बा को ही अर्चित करवाया । तब मुझसे शुभाशिष प्राप्त किये हुए उन्होंने अपना अपूर्ण कुशल इस प्रकार मुझको बताया ।

I did not allow them to honour me, but (I made them worship) the respectful Mother Sharada (Saraswati). Getting permission from me, they expressed their ignorance in this way.

आं गुरुदेव ! सर्वविध- कुशलमस्माकं भवदीय - प्रसादेन ।
भवल्लब्ध - विद्यामपि, वितरामः सर्वत्र विशुद्ध - चेतसा ॥6॥

हाँ गुरुदेव ! आपके प्रसाद से हमारा सब प्रकार का कुशल है । आपसे प्राप्त विद्या को भी हम सर्वत्र विशुद्ध मन से वितीर्ण कर रहे हैं ।

Oh, Gurudev! By your grace, we are prospering in every way. With the knowledge we got from you we are always purifying/overcoming our impure mind.

गुरुदेव! वयं तु यथा कथं, श्री मदाशीर्भिर्जीवाम एव ।
स्वीय-राष्ट्रस्य परन्तु, शोच्य-दशां दर्श दर्शमतितपामः ॥7॥

हे गुरुदेव ! श्रीमान् आप की उन आशिषों से हम तो जिस किसी प्रकार जी ही रहे हैं, परन्तु अपने राष्ट्र की शोचनीय दशा को देख - देख कर अत्यन्त सन्तप्त हैं ।

Oh, Gurudev! We are those your disciples that are somehow living (good) but are suffering just by looking at the deplorable/bad state of our country.

ISSN : 3048-6173

गार्हस्थ्य-चिन्ता तथा, न तुदत्यस्मान् यथा राष्ट्र-चिन्ता ।
राष्ट्र - गहन - चिन्तेयं, दिने दिनेऽस्मान् प्रदहत्येव ॥8॥

हमको गृहस्थी की चिन्ता उस प्रकार व्यथित नहीं करती, जिस प्रकार राष्ट्र की चिन्ता करती है । राष्ट्र की यह गहन चिन्ता हमको दिन दिन जला ही रही है ।

We are not disturbed so much by the family problems, but with the problems of the country. This intensive concern for our country is consuming us day by day.

अहं तैः समवेदनां, प्रकटीकुर्वाणस्तानेवं पृष्टवान् ।
ब्रूत राष्ट्र-चिन्तां स्वां, कदाचित् मयोन्मूलयितुं सुशक्येत ॥9॥

उनसे संवेदना प्रकट करते हुए मैंने उनसे इस प्रकार पूछा कि बताओ अपनी राष्ट्र- चिन्ता, कदाचित् वह मेरे द्वारा उन्मूलित की जा सके ।

Seeing their compassion, I asked them if I can help them in removing the doubts about the country.

कीदृक् शोच्या दशा सा ?, किञ्चित् सुस्पष्टा तु क्रियतां तावत् ।
येनान्येऽपि मया सह, जानन्तु जना अनुबोभुवतु स्वयमपि ॥10॥

वह शोचनीय दशा कैसी है ? कुछ उसे सुस्पष्ट तो किया जाय, जिससे दूसरे लोग भी मेरे साथ उसे जानें और स्वयं भी अनुभव करें ।

What is this terrible predicament/grievous condition? Something should be done, which would also make other people know and experience, what I know and feel.

मत्प्रोत्साहनं प्राप्य, ते राष्ट्रचिन्तामेवं मां स्वकीयाम् ।
प्रकाशयितुं प्रवृत्ता, यया को न राष्ट्रभक्तः सहमतः स्यात् ? ॥11॥

मेरा प्रोत्साहन पाकर वे अपनी राष्ट्रचिन्ता इस प्रकार प्रकाशित करने में प्रवृत्त हुए , जिस राष्ट्रचिन्ता से कौन राष्ट्र-भक्त सहमत नहीं हो ?

Being motivated like this, by me, they expressed their worries about the country in which patriot would not agree with them.

ISSN : 3048-6173

अमी कथितवन्तो यत्, पूर्वं यस्माद् भारतराष्ट्रात् स्वं स्वम् ।
चरित्रं शिक्षितुमत्र, मानवा उपदिष्टा मनुमहाराजेन ॥12॥

उन्होंने कहा कि पहले जिस भारत राष्ट्र से अपना अपना चरित्र सीखने के लिये यहाँ मनुमहाराज ने मानवों को उपदेश दिया था ।

They said that in India where, before, Manu gave the instructions to the humans how to behave.

अद्य तद्राष्ट्रस्यैव, प्रतिदिशं क्षीयमाणचरित्रं दृष्ट्वा।
मनुमहाराजोऽपि दिवि, विराजमानोऽवश्यमेव दुःखी स्यात् ॥13॥

आज उस राष्ट्र के ही प्रत्येक दिशा में क्षीण हो रहे चरित्र को देख कर स्वर्ग में विराजमान मनु महाराज भी अवश्य ही दुःखी होंगे ।

today, while watching from heaven, he surely feels bad seeing how the behaviour is getting corrupted everywhere in the country. |13|

किं किं न क्षेत्रमद्य, प्रदूषितमस्ति नानाभ्रष्टाचारैः।
प्रत्यहं वृत्तपत्रे, दूरदर्शने चैते दर्श्यन्त एव ॥14॥

नाना भ्रष्टाचारों से आज कौन कौन सा क्षेत्र प्रदूषित नहीं है ? प्रतिदिन समाचारपत्र और दूरदर्शन में ये भ्रष्टाचार दिखाये ही जाते हैं ।

Which area of our lives is not polluted by corruption? We see this every day in the newspapers and on the television. |14|

यत्रापि विलोक्यते अद्य, तत्र चरित्र - क्षरणमेव विलोक्यते ।
समाजस्य तु का कथा ? प्रशासनमपि नावधत्तेऽत्र हा हन्त ! ॥15॥

जहाँ भी देखा जाता है, आज वहीं चरित्र-क्षरण ही देखा जाता है । हा ! दुःख है, समाज की तो क्या कथा कही जाय ? प्रशासन भी इस विषय में ध्यान नहीं देता है।

Today, wherever you look, the degradation of a character can be seen. Yes, it's pitiful, what can be said about society. Even the government does not do anything about it.

ISSN : 3048-6173

IMPACT OF ARTIFICIAL INTELLIGENCE (AI) ON EDUCATION

Dr. Khushbu Jain
Assistant Professor
Rajasthan Shikshak Prashikshan Vidyapeeth
Shahpura Bagh, Jaipur

Abstract

Today we are in age of Artificial Intelligence (AI), where robots have begun to replace human beings. No one can deny how Artificial Intelligence (AI) is impacting the education industry and changing the way we learn. AI is used to increase efficiency, quality, accuracy, consistency of products and performance and it can work in environment which is dangerous or not suitable for humans. The integration of AI into the educational landscape has the potential to revolutionize the way education is delivered.

Everything has its pros and cons. In this article, we'll see the positive and negative impact of AI on education.

Introduction

Artificial Intelligence (AI) has emerged as transformative force, revolutionizing various aspects of our lives. Alan Turing was the first person to conduct substantial research in the field that he called intelligence. Artificial Intelligence was founded as an academic discipline in 1956. However it was John Mccarthy who in 1956, introduced the term "AI" and formally defined it as " the science and engineering of creating intelligent machines.

The growing use of AI in the 21st century is influencing a societal and economic shift towards increased automation. Data-driven decision making and the integration of AI systems into various economic sectors and areas of life, Impacting job markets, healthcare, government, industry and education.

Positive Impact of AI on education

The role of AI in transforming the education system is multifaceted and has the potential to

ISSN : 3048-6173

revolutionize the entire sector. Here are several key aspects of AI's role on education:

Personalized learning

One of the most significant advantages of AI in the education system is personalized learning. AI powered systems can generate customized lesson plans and assessments for each student, based on their unique learning abilities and needs. This enables tailored content delivery, adaptive learning paths and customized assessment, catering to individual needs.

Provides Problem solving assessment

Another advantage of AI in education is that it allows for the real time problem solving assessment. Teachers can use this technology to track how well their students are understanding concepts by monitoring individual progress throughout a lesson or course. By doing so they become aware of areas where more attention is needed and thus provide specific solutions.

Improved Access

AI can help to fill educational gaps by providing access to quality education in remote or undeserved areas. Virtual classrooms and online learning platforms powered by AI offer opportunities for students who might not have access to traditional education.

Reducing Educational Disparities

AI has the potential to reduce educational disparities by providing tailored support to disadvantaged students and identifying at-risk students who may need extra assistance.

Refined educational quality and high academic standards

AI is able to dynamically change course content deliver, real time feedback and assess student engagement through interactive learning techniques outside of traditional schools. AI enhances teaching strategies by giving pupils a distractive educational opportunity. Through AI interactions, students can access materials outside of the classroom and get real time feedback, opening up new opportunities for learning and development.

Cost effectiveness

The affordability of AI is another advantage. Technology can reduce education costs by automating laborious jobs and enabling individualized learning for each student. This could reduce

ISSN : 3048-6173

the need for tutors and teachers. Saving both students and educational institutions time and money.

Negative Impact of AI on education

Technology Dependency

AI is nothing without technology. For accessing AI one should have knowledge about current technological devices like computers and smart devices. So if any student wants to connect with AI then access to these technical devices must be given to him. This will lead to decline problem thinking abilities of students.

Teacher Training

Teachers need training to effectively integrate AI tools into their teaching methods. Building their capacity to harness AI's potential is a challenge.

Infrastructure and Connectivity

Inadequate infrastructure and connectivity issues can hinder the effective implementation of AI in education. Ensuring reliable connectivity and infrastructure is a challenge, especially is rural areas.

Job Displacement for Educators

The way AI continues to automate more aspects of the education process. There may be fewer demands for human educators, which could lead to both improved productivity and potential job loss.

Impersonal Assessment and Feedback

Automated grading and assessment systems may lack the nuanced feedback that human teachers provide. Students may miss out on tailored guidance and encouragement to enhance their academic performance as a result.

Expensive Implementation Costs

Implementing AI in education involves significant costs for schools and institutions. Not all educational settings may have the financial resources to adopt advanced AI solutions, potentially leading to unequal opportunities for students.

ISSN : 3048-6173

Conclusion

Overall, the evolving role of AI in education offers both opportunities and challenges for teachers. It is clear that AI has all the potential to bring drastic positive changes in the field of education but it should be implemented with caution.

Reference

1. Gupta, R., & Garg N. (2021). "Opportunities and challenges of artificial intelligence in education system of India". In M. Tomar et al. (Eds.), Proceedings of the 2nd international conference on artificial intelligence and sustainable technologies (pp. 150-159). Springer Jordan, M.I., & Mitchell, T.M. (2015), Machine learning: Trends, Perspectives, and prospects. Science, 349(6245), 255-260.

2. Pandey, V., & Bhatt, C. (2018). "Artificial Intelligence in Education: Prospects for India". In proceedings of the international conference on computational Intelligence and Data Science (ICCIDS) (pp. 196-201). IEEE.

3. Ramesh, K. (2018). "Artificial Intelligence in Education in India: Opportunities and challenges". International Journal of Engineering Development and Research, 6(3), 1-6.

4. Fayaz Ahmad Sayed., Rahmat Mohd., Mubarik, Muhammad, Alam. Md., & Hyder, Syed. (2021). "Artificial Intelligence and its role in Education". Sustainability. 13.10.3390/su132212902.

5. Neha Kandula. (2020). "Role of Artificial Intelligence in Education".

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ त्रैमासिक पत्रिका

सदस्यता फार्म

नाम / संस्था का नाम ----------

ग्राम ---------- पोस्ट ----------

तहसील ---------- जिला ----------

फोन ---------- पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

राशि (रुपये) ---------- बैंक का नाम ----------

डिमाण्ड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर क्रमांक ☐☐☐☐☐☐ (डीडी / एमओ **राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ** के नाम से भेजे)

सदस्यता शुल्क : एक वर्ष - 500/- पांच वर्ष - 2100/-

सदस्यता हेतु लिखे

शिक्षा कौस्तुभ, राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षक विद्यापीठ

शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर

Mobile : 9460124083 E-mail : info@rspv.org Website : www.rspv.org

Bank Detail

Bank Name	:	**Punjab National Bank**
Branch	:	**Air Force School, Amer Road, Jaipur**
A/c No.	:	**2976010100001063**
IFS Code	:	**PUNB0620100**

विद्यापीठ में आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ

ISSN : 3048-6173

प्रकाशक

पण्डित मोतीलाल जोशी प्राच्य विद्या अनुसंधान केन्द्र

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन

शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर Ph. : +91-141-2671967 | E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org